ओ३म्
वैदिक
वीर-गर्जना
पं० रामनाथ वेदालङ्कार

अनीता आर्ष प्रकाशन द्वारा प्रकाशित दुर्लभ पुस्तकें

		मूल्य
(१)	**अष्टाध्यायी सूत्र पाठः** **वार्तिक गणपाठ सहितः** **अनुवृत्ति निर्देश समन्वितश्च** *संस्कर्ता-श्री शंकरदेव पाठक*	२०.००
(२)	**आर्य समाज के दस नियम** *आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री-दर्शनवाचस्पति*	५.००
(३)	**महर्षि दयानन्द यांचे चरित्र कामगिरि (मराठी)** *हरिसखाराम तुंगार*	२०.००
(४)	**त्यागवाद** *स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	१५.००
(५)	**पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी** *डॉ० राम प्रकाश*	१५.००
(६)	**चतुर्वेद शतक** *स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती*	२०.००
(७)	**महत्ता अमीचन्द की भजनावली** *प्रो० भवानी लाल भारतीय*	२०.००
(८)	**बह्मचर्य का वैज्ञानिक स्वरूप** *डॉ० त्रिलोक चन्द*	८.००
(९)	**मिट्टी का घर** *डॉ० ओमप्रकाश वेदालंकार*	२०.००

व्यवस्थापकः

लाला आदित्य प्रकाश आर्य

५००/२ हलवाई हट्टा

पानीपत (हरियाणा)

ओ३म्

स्वाध्याय ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

वैदिक वीर - गर्जना

[परिवर्धित तृतीय संस्करण]

लेखक

पं० रामनाथ वेदालङ्कार

सम्पादक

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

अनीता आर्ष प्रकाशन

५००/२, हलवाई हट्टा, पानीपत (हरयाणा)

प्रकाशक :
लाला आदित्यप्रकाश आर्य
अनीता आर्ष प्रकाशन
५००/२, हलवाई हट्टा,
पानीपत (हरयाणा)

संस्करण : तृतीय

मूल्य २५/-

लेज़र टाइपसैटिंग :
सौफ्टेक कम्प्यूटर
वेद-मन्दिर, इब्राहिमपुर
दिल्ली-३६

मुद्रक : जोगेन्द्र सैन एण्ड ब्रादर्स
ए- ३०/१, नारायणा फेस-I,
नई दिल्ली-११००२८

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ**

पूर्व निवेदन

वैदिक महाकाव्य के जिन अमर गीतों को लेकर प्रथम बार लगभग पचास वर्ष पूर्व मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित हुआ था, उन्हें आज पुनः प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। ये गीत विजय के गीत हैं, जागृति देनेवाले हैं, प्रसुप्त मनों में स्फूर्ति लानेवाले हैं, हृदय में वीरता की तरङ्ग उठानेवाले हैं। सृष्टि के आदि युग से भारत के आर्य नर-नारी इन गीतों से प्रेरणा पाते रहे हैं। इन्हीं गीतों को गा-गाकर प्राचीन ऋषि-मुनि अपने जीवनों को उन्नति-पथ का अनुगामी बनाते रहे हैं; इन्हीं गीतों का गान करते हुए प्राचीन आर्य दिग्विजयी होते रहे हैं। आज पुनः इन गीतों के प्रचार की आवश्यकता है।

वेदों में युद्धसम्बन्धी अनेक रोमाञ्चकारी वर्णन आते हैं, किन्तु इस पुस्तक का उद्देश्य वैदिक युद्ध-विद्या को दर्शाना नहीं है। इसमें केवल उन वीरोचित मन्त्रों को स्थान दिया गया है, जो सर्वसाधारण के मनों में वीरता की भावना को भरनेवाले हैं। यह संसार एक समर-स्थली है। मनुष्य को बड़े-बड़े सङ्घर्षों में से होकर गुज़रना है। चारों तरफ विघ्न-बाधाएँ और शत्रु मुँह बाये खड़े हैं और उसे हड़पना चाहते हैं। इधर आन्तरिक क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि की पैशाची सेना मन पर आक्रमण करने को तैयार खड़ी है, तो उधर भयङ्कर व्याधियों की सेना शरीर पर आक्रमण करने का उपक्रम कर रही है। इधर सिंह-व्याघ्र-सर्प आदि भयानक जन्तु मनुष्य को अपना ग्रास बनाने के लिए तैयार हैं, तो उधर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि अनेक दैवी विपत्तियाँ उसे काल-कवलित करना चाह रही हैं। इधर धूर्त्त-वञ्चक-छली लोग मनुष्य को अपने चंगुल में फँसाने की चेष्टा कर रहे हैं, तो उधर अत्याचारी लोग उसकी गर्दन को अपनी तलवार का निशाना बनाने पर उतारू हो रहे हैं। इधर, उधर सब ओर शत्रु हैं। पग-पग पर विघ्न हैं, पग-पग पर बाधाएँ हैं, पग-पग पर नोकीले कङ्कड़ हैं, पग-पग पर चट्टानें हैं, पग-पग पर खाइयाँ हैं। इन सबको उसे पार करना है। जैसे नदी का प्रवाह तटों को गिराता हुआ, बाँधों को तोड़ता हुआ, चट्टानों को लाँघता हुआ आगे बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य को सब विघ्नों

को परास्त करते हुए जीवन-संग्राम में आगे ही आगे बढ़ना है। इसके लिए मन में प्रबल वीर-भावना की आवश्यकता है। उसी वीर-भावना को जागृत करने के उद्देश्य से यह संग्रह तैयार किया गया है।

मनुष्य के लिए वेद की प्रेरणा है कि ऐ नर! तू उठ, आगे बढ़, हिम्मत मत हार, आशावादी बन और तेरे मार्ग में जो बाधक बनकर खड़े हों उन्हें तोड़ता-फोड़ता-कुचलता हुआ आगे बढ़ता जा। ऐसा प्रयत्न कर कि जगत् में 'आर्य-राज्य' हो, राक्षस का राज्य न हो। कभी तू आततायी राक्षस के अत्याचार को सहन मत कर। "**उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र**—ऋग्० ३।३०।१७"—हे वीर! राक्षस को जड़ समेत उखाड़ फेंक। पर, कहीं हम वेद के इन वचनों का यह अर्थ न लगा लें कि वेद ने हमें पैशाची हिंसा की, लूट-पाट की, व्यर्थ उपद्रव मचाकर जगत् में अशान्ति फैलाने की अनुमति दे दी है। नहीं, वेद तो शान्ति के अग्रदूत बनकर हमारे सामने आते हैं। वेदों में तो भूमि-आकाश, सूर्य-चाँद-तारे, बादल-बिजली, वन-उपवन, तरु-लता, नदी-पर्वत आदि प्रकृति की एक-एक वस्तु के आगे शान्ति की पुकार मचायी गयी है। इसी से हम समझ सकते हैं कि वेद शान्ति के लिए कितने अधिक आतुर हैं। पर शान्ति इसका नाम नहीं है कि अत्याचारी हम पर अत्याचार करने आये और हम कायरों की तरह उसे सह लें, हमारी आँखों के सामने निरीह भोली जनता पर क्रूर अत्याचारियों की तलवार का नग्न नृत्य हो रहा हो और हम आँख मीच कर बैठे रहें, राक्षस शत्रु हमारे सुन्दर साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा हो और हम चुप रहें। उस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है, यही इन मन्त्रों में वेद ने हमें बताया है।

पाठक देखेंगे कि स्थान-स्थान पर इन मन्त्रों में राक्षसों के संहार का वर्णन है। जहाँ पाठक इससे बाह्य राक्षसों के विध्वंस का सन्देश लेंगे, वहाँ साथ ही हृदय में उत्पन्न होनेवाले आन्तरिक राक्षसों के संहार की भावना को भी जागृत करना चाहिए। बाहर की तरह अन्दर भी देवासुर-संग्राम चलता है। पापवृत्ति-रूप राक्षस देववृत्तियों पर विजय पाना चाहते हैं। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि अपने तीव्र सङ्कल्प-बल के शस्त्रों से पूर्णतः उनका संहार कर दे। पाप, अन्याय, अत्याचार, अविद्या किसी कोटि के राक्षस को सहन मत करो; सभी

राक्षसों को संसार से मिटाकर सुख-शान्ति के साम्राज्य को स्थिर करो; अपने-आप को और जगत् को राक्षस-हीन करते देवतुल्य बनाओ—यह वेद का सन्देश है।

यों तो वेद वीरता के गीतों से भरे पड़े हैं, परन्तु उन सबको इस छोटी-सी पुस्तिका में नहीं दिया जा सकता। चुनकर एकत्र किये हुए बहुत तीव्र भावनावाले ये कुछ गीत पाठकों को समर्पित हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि इनमें जो भावना भरी हुई है वह वैसी ही अनुवाद की भाषा में आ सके।

इस पुस्तक में तीन रचनाएँ हैं—'वीर-भावना', 'उद्बोधन' और 'वीरता की तरङ्ग में'। इनमें से प्रथम रचना लाहौर में आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर वेद-सम्मेलन में पढ़ी गयी थी। तत्पश्चात् दो रचनाएँ और लिखकर पुस्तक का रूप दिया गया। इन रचनाओं के विषय में यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। पाठक पढ़कर ही इनका परिचय पा सकेंगे। यह पुस्तक मेरा प्रथम प्रयास है, जिसका यह तृतीय संस्करण है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे इस प्रयास का जनता ने अच्छा स्वागत किया। इस संस्करण में ३८ नये मन्त्र और दे दिये गये हैं। एक मन्त्र अथर्व० ५।२९।४, जो पूर्व संस्करण में था, इस संस्करण में नहीं रक्खा गया। वेदमन्त्र स्वरचिह्नसहित छापे गये हैं। कहीं-कहीं भाषा में कुछ परिष्कार किया गया है। अन्त में अकारादि क्रम से मन्त्रानुक्रमणिका द्वितीय संस्करण के समान इस संस्करण में भी है। आशा है यह संस्करण पाठकों को अधिक रुचिकर प्रतीत होगा।

इस तृतीय संस्करण को प्रकाश में लाने का श्रेय ब्र० नन्दकिशोर जी आचार्य विद्यावाचस्पति तथा श्री लाला आदित्य-प्रकाशजी आर्य को है। ब्रह्मचारीजी बहुत उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। उनकी आग्रहपूर्ण प्रेरणा से ही मैं इस पुस्तक में संशोधन व परिवर्धन करने के लिए उद्यत हुआ। उनके माध्यम से श्री लालाजी ने अनीता आर्ष प्रकाशन की ओर से इसे प्रकाशित करने की कृपा की है। तदर्थ दोनों महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

वेद-मन्दिर — वेदप्रेमियों का सेवक,
ज्वालापुर, (हरिद्वार) — **रामनाथ वेदालङ्कार**
वैशाखी, २०५३

वीर - भावना

कृतं मे दक्षिणे हस्ते
जयो मे सव्य आहितः ॥

—अथर्व० ७।५२।८

मेरे दाएँ हाथ में कर्म है, बाएँ हाथ में
विजय रक्खी हुई है।

आइए, यदि आप वैदिक वीरता की दुन्दुभि सुनना चाहते हैं, तो आइए। हृदय में वीर-भावों की तरङ्गें उठानेवाले वैदिक गीतों को यदि आप पढ़ना चाहते हैं, तो आइए।

देखिए, वेद का सन्देश है कि वीर, पुरुषार्थी, कर्मण्य बनो; ओजस्वी, निर्भय, आशावादी बनो; मन्युमान् बनो; अत्याचार को न सहो; पिशाचों को कुचल डालो।

वेद की यह शिक्षा नहीं है कि तुम संसार में अकर्मण्य होकर, भाग्यवादी बनकर निष्क्रिय बैठे रहो। कर्मरहित भक्तिवाद और भाग्यवाद के प्रचार से भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी है। अब आवश्यकता है कि वैदिक कर्मयोग और वैदिक वीरता का प्रचार हो।

समय-समय पर भारतवर्ष में अनेक उच्चकोटि के धर्माचार्य जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने भक्ति और अहिंसा पर बहुत बल दिया है। किन्तु जिस सजीव भक्ति और जिस सजीव अहिंसा का उन्होंने प्रचार किया उसे तो लोगों ने भुला दिया और उसके स्थान पर धीरे-धीरे भक्ति के नाम से कर्महीन निर्जीव भक्ति और अहिंसा के नाम से कायरता का प्रचार होने लगा। यह भारत की अधोगति का एक बहुत बड़ा कारण रहा है। निःसन्देह भक्ति और अहिंसा हमारे धर्म के प्राण हैं, किन्तु यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भक्ति का अर्थ अकर्मण्यता और अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है।

वेद भक्ति के रङ्ग में रङ्गे हुए हैं, पर वेद की भक्ति कर्महीन भक्ति नहीं है। वेद भक्ति के साथ-साथ कर्मवीर होने का भी उपदेश देते हैं।

१. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

—यजुः० ४०।२

"मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे" यह वैदिक जीवन का आदर्श वाक्य है। वेद का भक्त अपने प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि—

---

१. (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे।

२. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥

—ऋग्० ७।३२।२६

"हे प्रभु, तू हमारी नस-नस में कर्म भर दे, हमें कर्म की शिक्षा दे, ताकि हम जीवन-संग्राम में जीवित-जागृत रहते हुए ज्योति को प्राप्त कर सकें।" सचमुच जिनके हाथ में कर्म नहीं है, उन्हें जीवन में ज्योति के दर्शन नहीं होते, उन्हें तो चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखायी देता है। उन्हें अपने जीवन में सुनहले दिन देखने को नहीं मिलते, उन्हें तो सर्वत्र निराशा ही निराशा दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए वेद का स्तोता अपने प्रभु से प्रार्थना कर रहा है कि तू मुझे कर्म से अनुप्राणित कर दे।

३. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

—ऋग्० १०।२५।१

"हे प्रभु, तू मेरे अन्दर उत्साह, बल और कर्म फूँक दे।" वेद की ये कर्मयोग की प्रार्थनाएँ हमें सदा स्मरण रखनी चाहिएँ। साथ ही वेद का यह सन्देश भी हमारे सामने आ जाना चाहिए कि अन्याय और अत्याचार को नष्ट करने के लिए यदि हिंसा भी करनी पड़े, तो वह हिंसा नहीं अपितु वीरता है। यदि कोई दुष्ट आततायी हम पर अत्याचार करने आता है, तो हमारा कर्त्तव्य है कि वीरता के साथ उसका मुकाबला करें, कायर न बनें। इसीलिए वेद मनुष्यों को जागृत करता हुआ कहता है—

४. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्राः वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥

—ऋग्० १०।१०३।१३

---

२. (इन्द्र) हे प्रभु, (नः) हमारे लिए (क्रतुं) कर्म को (आभर) ला, (यथा) जैसे (पिता पुत्रेभ्यः) पिता पुत्रों के लिए। (पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे जानेवाले प्रभु, (अस्मिन् यामनि) इस जीवन-संग्राम में (नः शिक्ष) हमें कर्म की शिक्षा दे, ताकि (जीवाः) जीवित रहते हुए हम (ज्योतिः अशीमहि) ज्योति को प्राप्त कर सकें।

३. हे प्रभु, (नः) हमारे अन्दर (भद्रं) श्रेष्ठ (मनः) उत्साह को, (दक्षं) बल को (उत) और (क्रतुं) कर्म को (अपि वातय) फूँक दो।

४. (नरः) हे वीरो, (प्र-इत) आगे बढ़ो, (जयत) विजय प्राप्त करो,

वीरो, उठो, आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो। इन्द्र तुम्हें सुख दे। तुम्हारी भुजाओं में बल हो, जिससे कि तुम कभी पराजित न हो सको।

५. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते। इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

—ऋग्० १।८०।३

हे वीर, आगे बढ़, शत्रु पर वार कर, उसे परास्त कर दे। तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता। शत्रु को झुका देनेवाला बल तुझमें विद्यमान है। आततायी को मार दे। तेरी जिन प्रजाओं को शत्रु ने पकड़ लिया है, उन्हें जीत ला। स्वराज्य का आराधक बन।

६. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥ —ऋग्० १०।१५२।३

हे वीर, राक्षसों का संहार कर, हिंसकों को कुचल डाल, दुष्ट शत्रु की दाढ़ें तोड़ दे। जो तुझे दास बनाना चाहे, उस वैरी के क्रोध को चूर कर दे।

७. सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥

—ऋग्० १।३६।९, यजुः० ११।३७

(इन्द्रः) प्रभु (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे। (वः बाहवः) तुम्हारी भुजाएँ (उग्राः सन्तु) पराक्रमयुक्त हों, (यथा) ताकि, तुम (अनाधृष्याः) अपराजेय (असथ) हो जाओ।

५. (प्र-इहि) आगे बढ़, (अभि-इहि) आक्रमण कर, (ते वज्रः) तेरा शस्त्र (न नियंसते) किसी से रोका नहीं जा सकता। (इन्द्र) हे वीर, (ते शवः) तेरा बल (नृम्णं) शत्रु को झुका देनेवाला है, (वृत्रं) दुष्ट को (हनः) मार दे, (अपः) प्रजाओं को (जयाः) जीत ले, (स्वराज्यम् अनु अर्चन् 'भव') स्वराज्य की आराधना करनेवाला बन।

६. (रक्षः विजहि) राक्षस को मार, (मृधः विजहि) हिंसकों को कुचल दे, (वृत्रस्य) दुष्ट शत्रु की (हनू) दाढ़ें (विरुज) तोड़ डाल। (वृत्रहन् इन्द्र) हे दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट कर देने का सामर्थ्य रखनेवाले वीर, (अभिदासतः) तुझे दास बनाना चाहने वाले (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (विरुज) चूर-चूर कर दे।

७. (सं सीदस्व) उत्तम स्थिति लाभ कर, (महान् असि) तू महान्

हे नर, उत्तम स्थिति प्राप्त कर, तू महान् है। संसार में चमक, दिव्यगुणों की कामना करनेवाला बन। हे पवित्र, हे प्रशस्त, हे अग्निस्वरूप, तू अपने आरोचमान, दर्शनीय प्रभाव-रूप धुएँ को छोड़।

८. पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य॥

—ऋग्० १।३६।१५

हे अग्नितुल्य वीर, बचा हमें राक्षस से, बचा हमें अदानी की हिंसा से। हे महान् तेजवाले, हे अतिशय युवा, बचा हमें हिंसक से, बचा हमें हिंसा का मनसूबा करनेवाले से।

९. न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

—ऋग्० २।२३।५

हे महत्ता के अधिपति, सुरक्षक तू जिसकी रक्षा में तत्पर हो जाता है, उसे न कहीं से दुःख, न पाप, न शत्रु, न 'मुँह में राम बगल में छुरी' ऐसे दुहरे आचरणवाले लोग हिंसित कर पाते हैं। उसके पास से तू समस्त हिंसक सेनाओं को भगा देता है।

है। (शोचस्व) चमक, (देववीतमः) दिव्यगुणों की कामना करनेवाला बन। (मियेध्य) हे मेध्य, हे पवित्र, (प्रशस्त) हे प्रशस्त, (अग्ने) अग्नितुल्य नर, (अरुषम्) आरोचमान, (दर्शतम्) दर्शनीय (धूमम्) प्रभावरूप धुएँ को (वि सृज) छोड़।

८. (पाहि) बचा (नः) हमें (अग्ने) हे अग्नितुल्य वीर, (रक्षसः) राक्षस से, (पाहि) बचा (अराव्णः) अदानी की (धूर्तेः) हिंसा से [धुर्वी हिंसायाम्]। (बृहद्भानो) हे महान् तेजवाले, (यविष्ठ्य) हे अतिशय युवा, तू (पाहि) बचा (रीषतः) हिंसक से (उत वा) और (जिघांसतः) मारने का इरादा करनेवाले से।

९. (ब्रह्मणस्पते) हे महत्ता के अधिपति, (सुगोपाः) सुरक्षक तू (यं रक्षसि) जिसकी रक्षा करने लगता है (तम्) उसे (न) न (कुतश्चन) कहीं से (अंहः) दुःख, (न दुरितम्) न पाप, (न अरातयः) न शत्रु, (न द्वयाविनः) न दुहरी चालवाले लोग (तितिरुः) हिंसित कर सकते हैं। (अस्मात्) इसके पास से तू (विश्वा इत्) सभी (ध्वरसः) हिंसक सेनाओं को (वि बाधसे) भगा देता है।

१०. यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन्॥
—ऋग्० २।३०।९

हे वीर, जो हमारा प्रच्छन्न द्रोही या घातक हो, उसे देखकर तीक्ष्ण शस्त्र से घायल कर। हे महत्ता के अधिपति, शत्रुओं को हथियारों से जीत। हे दीप्तिधन, द्रोह के लिए हिंसा करनेवाले को चारों ओर से घेर ले।

११. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्॥
—ऋग्० ४।४।४

हे अग्नितुल्य वीर, उठ खड़ा हो, अपने प्रभाव का विस्तार कर। हे तीक्ष्ण ज्वाला वाले, अमित्रों को दग्ध कर दे। हे दीप्तिमान्, जो हमसे शत्रुता करे, उस नीच को सूखे काठ के समान जला दे।

१२. यो अस्मभ्यमरातीयाद् यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्द्याद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु॥
—यजुः० ११।८०

---

१०. (यः) जो (नः) हमारा (सनुत्यः) प्रच्छन्न द्रोही (उत वा) अथवा (जिघत्नुः) जिघांसु हो (तम्) उसे (अभिख्याय) देखकर (तिगितेन) तीक्ष्ण शस्त्र से (विध्य) घायल कर दे। (बृहस्पते) हे महत्ता के अधिपति, तू (शत्रून्) शत्रुओं को (आयुधैः) हथियारों से (जेषि) जीत ले। (राजन्) हे तेजस्वी वीर, (द्रुहे) द्रोह के लिए (रीषन्तम्) हिंसा करनेवाले को (परिधेहि) चारों ओर से घेर ले।

११. (अग्ने) हे अग्नितुल्य वीर, (उत् तिष्ठ) उठ खड़ा हो, (प्रत्यातनुष्व) अपने प्रभाव का विस्तार कर। (तिग्महेते) हे तीक्ष्ण ज्वालावाले, तीक्ष्ण शस्त्रोंवाले, (अमित्रान्) दुश्मनों को (नि ओषतात्) निःशेष रूप से दग्ध कर दे। (समिधान) हे दीप्तिमान्, (यः) जो (नः) हमसे (अरातिम्) शत्रुता (चक्रे) करता है (तं नीचा) उस नीच को (शुष्कम् अतसं न) सूखे काठ के समान (धक्षि) जला दे।

१२. हे वीर, (यः) जो (अस्मभ्यम्) हमसे (अरातीयात्) शत्रुता करे, (यः च जनः) और जो जन (न द्वेषते) हमसे द्वेष करे, (यः) जो (निन्द्यात्) निन्दा करे, (अस्मान् धिप्सात् च) और हमें जान से मारना चाहे (तं सर्वम्) उन सबको, तू (मस्मसा कुरु) मसल डाल।

जो हमसे दुश्मनी करे, जो जन हमसे द्वेष करे, जो हमारी निन्दा करे और हमें जान से मारना चाहे, उन सबको हे वीर, तू मसल डाल।

१३. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥

—यजुः० १३।९

हे वीर, विस्तीर्ण जाल के समान अपने बल को फैला। अमात्य-सहित राजा के समान हाथी पर चढ़कर चल। शीघ्र फैल जाने वाला जाल लेकर शत्रुओं का पीछा कर। तू बाण चलानेवाला है, राक्षसों को तीव्र बाणों से विद्ध कर।

१४. भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
येना समत्सु सासहः ॥ —यजुः० १५।३९

याद रख, तेरी प्रशस्तियाँ भद्र होनी चाहिएँ। राक्षसों के संहार में अपने मन को भद्र बनाये रख, जिससे तू संग्रामों में शत्रुओं को सच्चे अर्थों में जीत सके।

१५. अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।
त्वꣳसाहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥

—यजुः० १७।७१

---

१३. (पृथ्वीं प्रसितिं न) विस्तीर्ण जाल के समान (पाजः कृणुष्व) बल उत्पन्न कर। (अमवान् राजा इव) अमात्यसहित राजा के समान (इभेन) हाथी पर चढ़कर (याहि) चल। (तृष्वीं प्रसितिम् अनु) शीघ्र फैल जानेवाला जाल लेकर (द्रूणानः) [शत्रुओं का] पीछा कर। तू (अस्ता असि) अस्त्र फेंकनेवाला है। (रक्षसः) राक्षसों को (तपिष्ठैः) तीव्र अस्त्रों से (विध्य) घायल कर।

१४. (प्रशस्तयः) तेरी प्रशस्तियाँ (भद्राः उत) भद्र ही हों। (वृत्रतूर्ये) राक्षसों के संहार में (मनः) मन को (भद्रम्) भद्र (कृणुष्व) रख, (येन) जिससे (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) सच्चे अर्थों में विजय प्राप्त कर सके।

१५. (अग्ने) हे अग्नितुल्य वीर, (सहस्राक्ष) हे सहस्र आँखोंवाले, (शतमूर्धन्) हे सौ मस्तिष्कोंवाले, (ते) तेरे (शतं प्राणाः) सौ प्राण हैं, (सहस्रं व्यानाः) हज़ार व्यान हैं। (त्वम्) तू (साहस्रस्य रायः) सहस्रों जनों को लाभ पहुँचानेवाली सम्पदा का (ईशिषे) स्वामी है। (तस्मै ते)

हे वीर, तू सहस्र आँखों वाला है, सौ मस्तिष्कों वाला है। तेरे सौ प्राण हैं, सौ व्यान हैं। तू सहस्रों को लाभ पहुँचानेवाली सम्पदा का स्वामी है। उस तुझ वीर का हम सत्कार करते हैं। तेरे बल का जयकार करते हैं।

१६. शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहाः॥ —यजुः० १७।८०

हे वीर, तू पवित्र ज्योतिवाला बन। तू अद्भुत ज्योतिवाला बन। तू सत्य ज्योतिवाला बन। विविध ज्योतियों से भासमान हो। तू गुणों से देदीप्यमान बन, सत्याचरण का पालक बन, निष्पाप बन।

१७. ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः॥ —यजुः० १७।८३

हे वीर, तू सत्याचरण से विजय लाभ कर, तू सत्यज्ञान से विजय लाभ कर। तू सेना से विजय लाभ कर। तू उत्तम सेनावाला बन। तू मित्रों को समीप रख, अमित्रों को दूर भगा। तू उत्कृष्ट जनों का गण बना।

१८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति॥
—अथर्व० १।२१।२

उस तुझ वीर का (विधेम) हम सत्कार करे। तेरे (वाजाय) बल के लिए (स्वाहा) जयकार हो, बधाई हो।

१६. हे नर, तू (शुक्र-ज्योतिः च) पवित्र ज्योतिवाला बन, (चित्र-ज्योतिः च) अद्भुत ज्योतिवाला बन। (सत्य-ज्योतिः च) सत्य की ज्योति से भासमान हो, (ज्योतिष्मान् च) और विविध ज्योतियों से ज्योतिष्मान् बन। (शुक्रः च) तू गुणों से देदीप्यमान हो, (ऋतयाः च) सत्याचरण का पालक हो, (अत्यंहः) निष्पाप हो।

१७. हे वीर, (ऋतजित् च) तू सत्याचरण से विजय करनेवाला हो, (सत्यजित् च) सत्यज्ञान से विजय करनेवाला हो। (सेनजित् च) सेना द्वारा विजय करनेवाला हो। (सुषेणःश्च) उत्कृष्ट सेनावाला हो। (अन्तिमित्रः च) मित्रों को समीप रखनेवाला, (दूरे अमित्रः च) और शत्रुओं को दूर भगानेवाला हो। तू (गणः) गणरूप हो अर्थात् उत्कृष्ट जनों का गण बना।

१८. (इन्द्र) हे वीर, (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (वि जहि) विनष्ट कर दो। (नीचा यच्छ) नीचा दिखा दो (पृतन्यतः) सेना से हमला

हे वीर, जो हमारी हिंसा करने आये, उसे नष्ट कर दे। सेना लेकर धावा बोलनेवाले को नीचा दिखा दे। जो हमें दास बनाना चाहे, उसे घोर अन्धकार में डाल दे।

१९. प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः॥

—अथर्व० ६।९८।३

हे वीर, तू पूर्व दिशा का राजा है। हे पापहन्ता, तू उत्तर दिशा के शत्रुओं को मारनेवाला है। जहाँ-जहाँ नदियाँ जाती हैं, वह सब स्थान तेरा जीता हुआ है। पुकारा जानेवाला, सुख-वर्षा करनेवाला तू चतुराई के साथ सर्वत्र पहुँचता है।

२०. यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात्तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान्प्रतीचो निर्दह जातवेदः॥

—अथर्व० ७।१०८।२

हे अग्नितुल्य वीर, जो हम सोये हुओं को, जागते हुओं को, खड़े हुओं को या चलते-फिरते हुओं को दास बनाना चाहें, उन आक्रान्ताओं को तू सहयोगी सेनापति के साथ मिलकर भस्म कर दे।

करनेवाले को (अधमं तमः) निचले अन्धकार में (गमय) ले जाओ, (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) दास बनाना चाहता है।

१९. (इन्द्र) हे वीर, (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा का (त्वम्) तू (राजा असि) राजा है। (वृत्रहन्) हे पापहन्ता, तू (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा का (शत्रुहः) शत्रुहन्ता (असि) है। (यत्र) जहाँ (स्रोत्याः) नदियाँ (यन्ति) जाती हैं, (तत्) वह स्थान (ते) तेरा (जितम्) जीता हुआ है। (हव्यः) पुकारने योग्य, (वृषभः) सुखवर्षक तू (दक्षिणतः) चतुराई के साथ (एषि) पहुँचता है।

२०. (जातवेदः) हे अग्नितुल्य वीर, (यः नः) जो हम (सुप्तान्) सोये हुओं को (जाग्रतो वा) या जागते हुओं को, (तिष्ठतः वा) अथवा खड़े हुओं को, (चरतः) या चलते हुओं को (अभिदासात्) दास बनाना चाहें (तान् प्रतीचः) उन हमारी ओर बढ़ते हुए आक्रान्ताओं को (जातवेदः) हे ज्ञानी, (सयुजा वैश्वानरेण) सहयोगी सेनानायक के साथ (सजोषाः) मिलकर तू (निर्दह) भस्म कर दे।

२१. स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥
—ऋग्० १।३९।२

हे वीरो, सुदृढ़ हों तुम्हारे हथियार शत्रु को दूर भगा देने के लिए; सुदृढ़ हों शत्रु के वार को रोकने के लिए। तुम्हारी सेना, तुम्हारा सङ्गठन, प्रशंसा के योग्य हो।

२२. असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात्॥
—अथर्व० ३।२।६

हे वीरो, वह जो शत्रुओं की सेना स्पर्धा करती हुई ओज के साथ हमारी ओर बढ़ी चली आ रही है, उसे निकम्मा कर देनेवाले तामसास्त्र से विद्ध कर दो, जिससे अन्धकाराच्छन्न होकर एक-दूसरे को न जान पाये।

२३. उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥
—अथर्व० ११।१०।१

उठो वीरो, कमर कस लो, झण्डे हाथों में पकड़ लो। जो भुजङ्ग हैं, लम्पट हैं, पराये हैं, राक्षस हैं, वैरी हैं, उन पर धावा बोल दो।

---

२१. (स्थिराः सन्तु) सुदृढ़ हों (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (पराणुदे) शत्रु को परे खदेड़ देने के लिए, (उत) और (वीडू) सुदृढ़ हों (प्रतिष्कभे) शत्रु के वार को रोकने के लिए। (युष्माकं) तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) स्तुति के योग्य हो, (मायिनः मर्त्यस्य) मायावी मनुष्य की [सेना] (मा) ऐसी न हो सके।

२२. (मरुतः) हे वीरो, (असौ) वह (या) जो (परेषाम्) शत्रुओं की (सेना) सेना (स्पर्धमाना) स्पर्धा करती हुई (ओजसा) ओज के साथ (अस्मान् अभि) हमारी ओर (आ एति) आ रही है, (ताम्) उसे (अपव्रतेन) निकम्मा कर देनेवाले (तमसा) तामसास्त्र से (विध्यत) विद्ध कर दो, (यथा) जिससे (एषाम्) इनमें से (अन्यः) एक (अन्यम्) दूसरे को (न जानात्) न जान सके।

२३. (उदाराः) वीरो! (उत्तिष्ठत) उठो, (संनह्यध्वम्) तैयार हो जाओ (केतुभिःसह) झण्डों के साथ। (सर्पाः) जो भुजङ्ग हैं, लम्पट हैं (इतर-जनाः) जो इतर-जन हैं, पराये हैं, (रक्षांसि) जो राक्षस हैं

वेद के इन्हीं उद्‌बोधक वचनों को सुनकर वैदिक वीर गर्जता हुआ कह रहा है—

२४. यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥

—अथर्व० १।१६।४

ओ आततायी, तू मुझे निस्तेज, बुझा हुआ मत समझना। मत समझना कि तू आकर मुझे सता लेगा और मैं चुपचाप सह लूँगा। देख, "यदि तू मेरी गाय को मारेगा, घोड़े को मारेगा, मेरे सम्बन्धी पुरुषों को मारेगा, तो याद रख, मैं तुझे सीसे की गोली से बेध दूँगा।"

२५. यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम्॥

—अथर्व० ४।३६।२

जो व्यर्थ में किसी का वध न करनेवाले, किन्तु दुष्टों को पकड़-पकड़कर वध करनेवाले हम लोगों को मारने का सङ्कल्प करेगा, उसे मैं जलती हुई आग की लपटों में झोंक दूँगा।

२६. यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे॥

—अथर्व० ६।३७।३

जो भले आदमियों को शाप न देनेवाले, किन्तु दुर्जनों को जी

(अमित्रान्) उन सब वैरियों पर (अनु धावत) धावा कर दो।

२४. (यदि) यदि तू (नः गां हंसि) हमारी गाय को मारेगा, (यदि अश्वं) यदि घोड़े को [मारेगा], (यदि पूरुषम्) यदि पुरुष को [मारेगा], तो (तं त्वा) उस तुझको (सीसेन) सीसे से, सीसे की गोली से (विध्यामः) बेध देंगे, (यथा) जिससे तू (नः अवीरहा असः) हमारे वीरों का घात न कर सके।

२५. (यः) जो (अदिप्सतः नः) न सतानेवाले हमको (दिप्सत्) सताना चाहता है, (यः च) और जो (दिप्सतः) [दुर्जनों को] सतानेवाले हमको (दिप्सति) सताना चाहता है (तम्) उसको (वैश्वानरस्य अग्रे वैश्वानर आग की (दंष्ट्रयोः) दाढ़ों में, ज्वालाओं में (अपिदधामि) धर दूँगा।

२६. (यः) जो (अपशतः नः) शाप न देनेवाले हमको (शपात्) शाप देगा, कोसेगा (यः च) और जो (शपतः नः) [दुर्जनों को] शाप

भरकर शाप देनेवाले हम लोगों को आकर कोसेगा, हमारे सामने आकर व्यर्थ गाली-गलौज बकेगा, उसे मैं मौत के आगे फेंक दूँगा, जैसे कुत्ते के आगे सूखी रोटी के टुकड़े।

२७. आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत्॥

—अथर्व० ६।६६।२

हे शत्रुओ, धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए, शर-सन्धान करते हुए, बाण छोड़ते हुए जो तुम हमारी ओर दौड़ रहे हो, वे तुम निहत्थे हो जाओ। हमारा वीर सेनापति आज तुम्हारे छक्के छुड़ा देगा।

२८. यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे॥

—अथर्व० ७।१३।१

अरे, मुझे क्या तुमने साधारण मनुष्य समझा है? मैं तो सूर्य हूँ, सूर्य! जैसे सूर्य उदित होकर सब नक्षत्रों के तेज को हर लेता है, वैसे ही मैं अपनी अपूर्व आभा के साथ जगत् में उदित होकर शत्रुता करनेवाले सब स्त्री-पुरुषों के तेज को हर लूँगा।

२९. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः। इदमहमामुष्यायणस्याऽमुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ —अथर्व० १०।५।३६

देनेवाले हमको (शपात्) शाप देगा, कोसेगा, (तम्) उसको (मृत्यवे) मौत के आगे (प्रत्यस्यामि) फेंक दूँगा (इव) जिस तरह (शुने) कुत्ते के आगे (अवक्षामं) सूखी (पेष्ट्रम्) पिट्ठी की रोटी।

२७. (शत्रवः) हे शत्रुओ, (आतन्वान्तः) धनुष पर डोरी तानते हुए, (आयच्छन्तः) धनुष खींचते हुए, (अस्यन्तः) बाण छोड़ते हुए (ये च धावथ) जो तुम हमारी ओर दौड़ रहे हो, वे तुम (निर्हस्ताः) निहत्थे (स्थन) हो जाओ। (इन्द्रः) सेनापति (वः अद्य) तुम्हारे आज (परा शरीत्) छक्के छुड़ा देगा।

२८. (यथा) जैसे (उद्यन् सूर्यः) उदित होता हुआ सूर्य (नक्षत्राणां) नक्षत्रों के (तेजांसि) तेजों को (आददे) हर लेता है, (एव) ऐसे ही मैं (द्विषतां) शत्रुता करनेवाले (स्त्रीणां च पुंसां च) स्त्रियों और पुरुषों के (वर्चः) तेज को (आददे) हर लूँगा।

२९. (अस्माकं) हमारी (जितं) विजय होगी, (अस्माकं) हमारा

निश्चय ही हमारी विजय होगी, हमारा अभ्युदय होगा, शत्रु की सेना को हम परास्त कर देंगे। मुझसे शत्रुता ठाननेवाला जो अमुक पुरुष का बेटा और अमुक माँ का बेटा है, उसके वर्चस् को, तेज को, प्राण को, आयु को मैं हर लूँगा। उसे भूमि पर दे मारूँगा।

३०. अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा॥ —अथर्व० १०।६।१

मुझसे वैर करनेवाले दुष्टहृदयी द्वेषी शत्रु का मैं सिर काट डालूँगा।

यह है अत्याचार व अत्याचारी के प्रति वेद की उग्र भावना। वेद चुपचाप अत्याचार को सह लेने की शिक्षा नहीं देता, अपितु अत्याचारी का सिर फोड़ डालने की हिम्मत बँधाता है। केवल वेद के पुरुषों में ही ऐसी वीर-भावना नहीं भरी है, किन्तु वेद की नारियाँ भी ऐसे ही वीर-भावों से ओतप्रोत हैं। एक नारी के उद्गार देखिए—

३१. अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते। उताहमस्मि
वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥
—ऋग्० १०।८६।९

अरे, यह घातक मुझे अबला समझे बैठा है? मैं अबला नहीं, वीराङ्गना हूँ, वीर की पत्नी हूँ। मौत से न डरनेवाले वीर मेरे सखा हैं। मेरा पति संसार में अपनी तुल्यता नहीं रखता।

(उद्भिन्नम्) अभ्युदय होगा, (विश्वाः) सब (अरातीः पृतनाः) शत्रु-सेनाओं को (अभ्यष्ठाम्) मैंने परास्त कर दिया है। (इदम् अहम्) यह मैं (आमुष्यायणस्य) अमुक पुरुष के बेटे के, (अमुष्याः पुत्रस्य) अमुक माँ के बेटे के (वर्चः) वर्चस् को, (तेजः) तेज को, (प्राणम्) प्राण को, (आयुः) आयु को (निवेष्टयामि) लपेट लूँगा, (इदम् एनम्) यह मैं इसको (अधराञ्चं पादयामि) नीचे भूमि पर दे मारूँगा।

३०. (अरातीयोः) शत्रुता का आचरण करनेवाले (भ्रातृव्यस्य) वैरी का और (दुर्हार्दः) दुष्ट-हृदयी (द्विषतः) द्वेषी शत्रु का (शिरः) सिर (ओजसा) पराक्रम से (अपिवृश्चामि) काट डालूँगा।

३१. (अयं शरारुः) यह घातक (माम्) मुझे (अवीराम् इव) अबला-सा (अभिमन्यते) समझता है, (उत अहम्) मैं तो (वीरिणी अस्मि) वीराङ्गना हूँ (इन्द्रपत्नी) वीर की पत्नी हूँ, (मरुत्सखा) मौत से न डरनेवाले वीर मेरे सखा हैं। (इन्द्रः) मेरा वीर पति (विश्वस्मात्) सबसे

३२. मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥

—ऋग्० १०।१५९।३

मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुड़ा देनेवाले हैं, मेरी पुत्री अद्वितीय तेजस्विनी है। मेरे पति में उत्तम कीर्ति का निवास है। और मैं अपनी क्या बताऊँ? कोई मेरी तरफ आँख उठाकर तो देखे, ऐसा परास्त होकर लौटेगा कि सदा याद रक्खेगा।

यह है वेद की नारी। अस्तु, आगे और सुनिए वैदिक वीरों की बहादुरी के गीत—

३३. सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे।
सर्वान्दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम्॥

—अथर्व० ४।३६।१

पिशाचों को मैं अपनी पूरी शक्ति से दबा दूँगा, इनकी धन-दौलत छीन लूँगा। सब दुष्टता करनेवालों को नष्ट कर दूँगा, मेरा यह सङ्कल्प पूरा होकर रहेगा।

३४. तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम्॥

—अथर्व० ४।३६।६

दुष्ट पिशाचों के बीच में मैं खलबली मचा देनेवाला हूँ, जैसे बाघ आकर ग्वालों के बीच में। मुझे सामने देखकर पिशाच अपनी सब चौकड़ी भूल जाते हैं, जैसे कुत्ते शेर को देखकर।

(उत्तरः) बढ़ा-चढ़ा है।

३२. (मम पुत्राः) मेरे पुत्र (शत्रुहणः) शत्रुहन्ता हैं, (अथो) और (मे दुहिता) मेरी पुत्री (विराट्) विशेष तेजस्विनी है। (उत अहम्) और मैं (सञ्जया अस्मि) विजयिनी हूँ। (मे पत्यौ) मेरे पति में (उत्तमः श्लोकः) उत्तम कीर्त्ति का निवास है।

३३. (पिशाचान्) पिशाचों को (सहसा) बल से (सहे) परास्त कर दूँगा, (एषाम्) इनकी (द्रविणं) धन-दौलत को (आ-ददे) छीन लूँगा। (सर्वान्) सब (दुरस्यतः) दुष्टता करनेवालों को (हन्मि) मार दूँगा। (मे आकूतिः) यह मेरा सङ्कल्प (समृध्यताम्) पूरा होवे।

३४. (पिशाचानाम्) पिशाचों का (तपनः) सन्तप्त कर डालनेवाला (अस्मि) हूँ, (इव) जैसे (व्याघ्रः) बाघ (गोमताम्) ग्वालों का।

३५. न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे॥

—अथर्व० ४।३६।७

पिशाचों के साथ, चोर-लुटेरों के साथ, डाकुओं के साथ मैं कभी समझौता नहीं कर सकता। जिस गाँव में, जिस नगर में, मैं जा पहुँचता हूँ, पिशाच वहाँ से भाग खड़े होते हैं।

३६. यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते॥

—अथर्व० ४।३६।८

सुन लो, जिस गाँव में भी यह मेरा दमनकारी बल पहुँच जाता है, पिशाच वहाँ से रफूचक्कर हो जाते हैं। मुझे देखते ही वे सब दुष्टता करना भूल जाते हैं।

वेद की वीर-गर्जना यहीं समाप्त नहीं हो जाती। और देखिये—

३७. अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान्॥

—अथर्व० ४।३।३

ओ बाघ, तेरी आँखें फोड़ देंगे, तेरा मुँह चीर देंगे, बीसों नख

(श्वानः) कुत्ते (सिंहम् इव) जैसे शेर को (दृष्ट्वा) देखकर, वैसे ही (ते) वे पिशाच (दृष्ट्वा) मुझे देखकर (न्यञ्चनम्) चौकड़ी (न विन्दन्ते) नहीं ले पाते।

३५. (पिशाचैः) पिशाचों के साथ (न संशक्नोमि) मैं समझौता नहीं कर सकता, (न स्तेनैः) न चोरों के साथ, (न वनर्गुभिः) न डाका मारकर जङ्गल में जा छिपनेवाले डाकुओं के साथ। (पिशाचाः) पिशाच (तस्मात्) वहाँ से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं (यं ग्रामम्) जिस गाँव में (अहम् आविशे) मैं प्रविष्ट हो जाता हूँ।

३६. (यं ग्रामम्) जिस गाँव में (इदं मम) यह मेरा (उग्रं सहः) उग्र बल (आविशते) पहुँच जाता है (तस्मात्) वहाँ से (पिशाचाः) पिशाच (नश्यन्ति) भाग जाते हैं, (पापम्) पाप का, दुष्टता का (न उपजानते) विचार भी नहीं कर पाते।

३७. (व्याघ्र) ओ बाघ, (अक्ष्यौ च ते) तेरी दोनों आँखों को (मुखं च ते) और तेरे मुँह को, (आत्) और फिर (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नाखूनों को (जम्भयामसि) कुचल देंगे।

तोड़ डालेंगे। आ तो सही!!

३८. व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आदुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्॥

—अथर्व० ४।३।४

नोकीले दाँतोंवाले बाघ को हम जान से मार डालेंगे। चोर का, साँप का, परपीड़क राक्षस का, भेड़िये का हम वध कर देंगे।

३९. यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।

—अथर्व० ४।३।५

जो कोई चोर-लुटेरा हमारे पास आएगा, वह अच्छी तरह कुट-पिट कर लौटेगा।

४०. अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते॥

—अथर्व० ४।३६।१०

मौत उसे जकड़ लेगी, जैसे रस्सी घोड़े को। जो कोई मलिन चित्तवाला मुझ पर अपना क्रोध दिखाएगा, वह मेरी पकड़ से नहीं छूट पाएगा।

४१. परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु॥ —अथर्व० ४।३।२

ओ भेड़िये, मुझसे दूर रहना। ओ चोर, मुझसे दूर रहना। ओ

---

३८. (दत्वताम्) दाँतोंवाले प्राणियों में (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (व्याघ्रम्) बाघ को, (आत् उ) और (स्तेनम्) चोर को, (अथो) और (अहिम्) साँप को, तथा (यातुधानम्) यातना देनेवाले राक्षस को, (अथो) और (वृकम्) भेड़िये को (जम्भयामसि) हम मार डालेंगे)।

३९. (यः) जो कोई (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (आयति) हमारे पास आयेगा, (सः) वह (संपिष्टः) कुट-पिटकर, अच्छी तरह से मरम्मत किया जाकर (अपायति) वापिस लौटेगा।

४०. (तम्) उसे (निर्ऋतिः) मृत्यु (अभिधत्ताम्) जकड़ ले, (इव) जैसे (अश्वम्) घोड़े को (अश्वाभिधान्या) रस्सी से [जकड़ते हैं]। (यः मल्वः) जो मलिन चित्तवाला (मह्यं क्रुध्यति) मुझपर क्रोध दिखाएगा (स उ) वह (पाशात्) पाश से (न मुच्यते) नहीं छूट पायेगा।

४१. (वृकः) भेड़िया (परेण पथा) परे के रास्ते से (एतु) चला जाए (उत) और (तस्करः) चोर भी (परमेण "पथा एतु") परे के रास्ते

साँप, मुझसे दूर रहना। ओ पापी, मुझसे दूर रहना। सावधान, क्यों मेरे पास आकर जान से हाथ धोना चाहते हो।

देखिए, वैदिक वीर कैसा साहसी, ओजस्वी, जीवित और निर्भय है! चाहे शेर, बाघ आदि कोई भयानक जन्तु हो, चाहे चोर-डाकू-लुटेरा हो, चाहे अन्य कोई आततायी या शत्रु हो, किसी से वह डरनेवाला नहीं है। वह तो अपने प्राण को सम्बोधन करके कहता है—

४२. यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः॥ —अथर्व० २।१५।१

ऐ मेरे प्राण, तू किसी से डर मत। देख यह धरती क्या किसी से डरती है? यह आकाश क्या किसी से डरता है? तू भी मत डर, कोई तेरा बाल बाँका नहीं कर सकेगा।

४३. अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात्॥

ऐ मेरे आत्मन्, तू मेरा लोहे का कवच है। पूर्व दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात्॥

दक्षिण दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत् स ऋच्छात्॥

से चला जाए। (दत्वती रज्जुः) दाँतों से डसनेवाली रस्सी अर्थात् साँप भी (परेण) परे से और (अघायुः) पापेच्छु भी (परेण) परे से (अर्षतु) निकल जाए [अर्थात् ये सब मुझसे परे ही परे रहें, पास आने की हिम्मत न करें]।

४२. (यथा) जैसे (द्यौः च पृथिवी च) आसमान और धरती (न बिभीतः) किसी से डरते नहीं (न रिष्यतः) न किसी से हिंसित होते हैं, (एव) इसी तरह (मे प्राण) ऐ मेरे प्राण, (मा विभेः) मत डर।

४३. ऐ आत्मन्, तू (मे) मेरा (अश्मवर्म) लोहे का कवच (असि) है। (यः) जो कोई (अघायुः) पापेच्छु (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से

पश्चिम दिशा से जो कोई मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।

एतत् स ऋच्छात्॥

उत्तर दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात्।

एतत् स ऋच्छात्॥

नीचे की दिशा से जो कोई पापी मुझपर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात्।

एतत् स ऋच्छात्॥

ऊपर की दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्।

एतत् स ऋच्छात्।

बीच की दिशाओं से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आएगा, वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा।

—अथर्व० ५।१०

४४. पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि।

"पृथ्वी पर से उसे उखाड़ फेकेंगे, जो हमसे शत्रुता करता है।" पृथ्वी से भागकर यदि वह अन्तरिक्ष में चला जाए तो—

अन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि।

"अन्तरिक्ष से भी उसे निकाल फेंकेंगे, जो हमसे शत्रुता करता है।" अन्तरिक्ष से जान बचाकर यदि द्युलोक में भी चला जाएगा

[(दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से, (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से, (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से, (ध्रुवाया दिशः) निचली दिशा से, (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर की दिशा से, (दिशाम् अन्तर्देशेभ्यः) बीच की दिशाओं से] (मा अभिदासात्) मुझ पर घात करने आयेगा (एतत्) देखना (स) वह (ऋच्छात्) दूर जाकर पड़ेगा।

४४. (पृथिव्याः) पृथ्वी से [(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से, (दिवः)

तो—

दि॒वस्तं निर्भ॑जामो॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑।

"द्युलोक से भी उसे निकाल बाहर करेंगे, जो हमसे शत्रुता करता है।" द्युलोक से भागकर यदि वह दिशाओं की शरण लेगा तो—

दि॒ग्भ्यस्तं निर्भ॑जामो॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑।

"दिशाओं से उसे निकाल कर छोड़ेंगे, जो हमसे शत्रुता करता है।" शत्रु को हम कहीं का भी नहीं रहने देंगे।

—अथर्व० १०।५

शत्रु की बात तो दूर रही, शत्रु से की जानेवाली हिंसा को ही मूर्तिमती मानकर उसे फटकार बतलाता हुआ वैदिक वीर सिंहनाद कर रहा है—

४५. स्वा॒य॒सा अ॒सय॑ः सन्ति नो गृ॒हे वि॒द्मा ते॑ कृत्ये यति॒धा परूं॑षि। उत्ति॑ष्ठैव परे॑ही॒तोऽज्ञा॑ते॒ किमि॒हेच्छ॑सि॥

—अथर्व० १०।१।२०

सावधान! हमारे घरों में लोहे की तीक्ष्ण धारवाली तलवारें विद्यमान हैं। तलवार की तेज धार से तेरा एक-एक जोड़ अलग कर देंगे। भाग खड़ी हो, ओ हिंसा-पिशाचिनी, यहाँ तेरा क्या काम है?

४६. ग्री॒वास्ते॑ कृत्ये॒ पादौ॒ चापि॑ कर्त्स्या॑मि॒ निर्द्र॑व॥

—अथर्व० १०।१।२१

ओ शत्रुजन्य हिंसा-पिशाचनी, तेरी गर्दन अलग कर दूँगा, तेरे

द्यु-लोक से, (दिग्भ्यः) दिशाओं से] (तं निर्भजामः) उसे निकाल बाहर करेंगे (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) दुश्मनी करता है।

४५. (स्वायसाः) मज़बूत लोहे की बनी (असयः) तलवारें (सन्ति) विद्यमान हैं (नः गृहे) हमारे घर में। (विद्म) हम जानते हैं (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनी, (ते) तेरे (यतिधा) जितने प्रकार के (परूंषि) जोड़ हैं। (उत्तिष्ठ एव) उठ ही जा (परेहि इतः) भाग खड़ी हो यहाँ से, (अज्ञाते) ओ अपरिचिते, (इह किम् इच्छसि) यहाँ तू क्या चाहती है?

४६. (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनी, (ते) तेरी (ग्रीवाः) गर्दन (पादौ च) और दोनों पैर (अपि कर्त्स्यामि) काट डालूँगा, नहीं तो

पैर काट डालूँगा; नहीं तो भाग जा यहाँ से।

और सुनिए, अपनी अपूर्व वीरता का परिचय देता हुआ मनुष्य कह रहा है—

४७. अभीऽइदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति। खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः॥ —ऋग्० १०।४८।७

अरे, मैं अकेला ही रिपु-दल के छक्के छुड़ा दूँगा। यदि दो मिलकर आएँगे, तो उनके लिए भी मैं अकेला पर्याप्त हूँ। दो के स्थान पर तीन आ जाएँ, तो वे भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। शत्रुओं को मैं ऐसे पीस डालूँगा, जैसे खलिहान में पूलों को। ये निर्वीर्य शत्रु मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं!

४८. अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं स वृत्रेव दासं वृत्रहाऽरुजम्। यद् वर्धयन्त प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाऽकरम्॥ —ऋग्० १०।४९।६

सुनो, मैं वह हूँ जिसने गरीबों का खून चूस-चूस कर नयी-नयी हवेलियाँ खड़ी कर लेनेवाले, बड़े-बड़े रथ-बग्घियों पर सैर-सपाटे करनेवाले दस्युओं को बात की बात में धूल में मिला छोड़ा है। अत्याचार के बल पर फूलने-फलनेवाले दुष्टचों को मैंने टाँग पकड़ कर ऐसा उछाला है कि वे आकाश के भी परले पार जाकर गिरे हैं।

(निर्द्रव) भाग जा।

४७. (निष्षाड् अस्मि) मैं निःशेष रूप से शत्रुओं का मर्दन कर डालनेवाला हूँ, (एकः) अकेला ही (इदम् एकम्) इस एक को (अभि-अस्मि) परास्त कर दूँगा, (द्वा) दो को भी (अभि-अस्मि) परास्त कर दूँगा, (त्रयः) तीन भी (किमु करन्ति) मेरा क्या कर लेंगे? (खले) संग्राम में (भूरि) इकट्ठे बहुतों को (प्रतिहन्मि) कुचल डालूँगा, (न) जैसे (खले) खलिहान में (पर्षान्) पूलों को। (अनिन्द्राः) ये निर्वीर्य (शत्रवः) शत्रु (मा किं निन्दन्ति) मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं?

४८. (अहं सः) मैं वह हूँ (यः) जो (नव-वास्त्वम्) नयी-नयी हवेलियोंवाले (बृहद्रथम्) बड़े-बड़े रथोंवाले भी (दासम्) दस्यु की (सम् अरुजम्) धज्जी-धज्जी उड़ा देता हूँ, (इव) जैसे (वृत्रहा) बिजली

मैं अकेला ही नहीं, मेरे सब वीर तीक्ष्ण-तेजस्वी हैं—

४९. तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥

—अथर्व० ३।१९।४

परशु की धार से भी तीक्ष्ण हैं, अग्नि की ज्वाला से भी तीक्ष्ण हैं, इन्द्र के वज्र से भी तीक्ष्ण हैं—जिनका मैं अगुआ हूँ।

देखिये, वैदिक वीर के अन्दर कैसा अदम्य उत्साह है, कैसी वीरता की उमंग है, कैसा प्रबल आत्म-विश्वास है! जो बाह्य या आन्तरिक शत्रु उसके इस उत्साह को, इस मनोबल को, कुचलना चाहेगा, उसकी वह कैसी दुर्गति बनाएगा यह भी उसीके मुख से सुन लीजिए—

५०. इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति। पाशे स बद्धो दुरिते नियुज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति॥

—अथर्व० २।१२।२

हे देवो, सुन लो, मेरी यह भीष्म-प्रतिज्ञा सुन लो। आज मेरे बलवान् मनमें प्रबल सङ्कल्प उठ रहे हैं। जो कोई मेरे मनोबल की हिंसा करने आएगा, वह पाशबद्ध होकर दुर्गति पाएगा।

(वृत्रा) बादलों की, (यत्) और जो, (वर्धयन्तम्) बढ़ते हुए (प्रथयन्तम्) विस्तार पाते हुए [उस दस्यु को] (आनुषक्) निरन्तर (दूरे) बहुत दूर (रोजना रजसः पारे) चमकीले द्युलोक के भी परले पाल (अकरम्) कर देता हूँ, उठाकर फेंक देता हूँ।

४९. (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं (परशोः) परशु से, (उत) और (अग्नेः) अग्नि से भी (तीक्ष्णतराः) अधिक तीक्ष्ण हैं। (इन्द्रस्य वज्रात्) इन्द्र के वज्र से (तीक्ष्णीयांसः) अधिक तीक्ष्ण हैं, (येषाम्) जिनका (अस्मि) मैं हूँ (पुरोहितः) अगुआ।

५०. (देवाः) हे देवो, (इदम्) मेरे इस कथन को (शृणुत) सुन लो, (ये) जो तुम (यज्ञियाः) पूजास्पद (स्थ) हो; (भरद्वाजः) मेरा बलवान् मन (मह्यम्) मेरे लिए (उक्थानि) प्रबल सङ्कल्पों को (शंसति) कह रहा है। (सः) वह (पाशे बद्धः) पाश-बद्ध होकर (दुरिते नियुज्यताम्) दुर्गति में पड़े (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है। [मनो वै भरद्वाज ऋषिः, श०ब्रा० ८।१।१।९]

५१. इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥
—अथर्व० २।१२।३

ऐ मेरे आत्मन्, सुन, जोकि मैं देदीप्त हृदय के साथ पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ। काट डालूँगा उसे, जैसे कुल्हाड़े से वृक्ष को, जो मेरे मन की हिंसा करने आएगा।

भला किसकी हिम्मत है जो ऐसे उग्र मनस्वी के मन की हिंसा कर सके। मन में आनेवाले पाप को भी वह वीर, देखिए, कैसी फटकार बता रहा है!

५२. परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न
त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥
—अथर्व० ६।४५।१

ओ मन के पाप, चल, दूर हट मेरे पास से! क्यों निन्दित सलाहें दे रहा है? चल, लम्बा बन यहाँ से, वृक्षों से जाकर टकरा, जङ्गलों में भटकता फिर। मुझे फुरसत कहाँ है, जो तेरा स्वागत करूँ। मेरा मन तो गृह-कार्यों में और गो-सेवा आदि शुभ कार्यों में लगा है।

कैसी आत्म-विश्वास-भरी वीरतापूर्ण और सजीव उक्ति है। क्या ऐसे सतर्क और साहसी व्यक्ति के मन में पाप कभी डेरा डाल सकता है? आगे देखिए, अपने सङ्कल्प-बल को जागृत करता हुआ वह वीर कह रहा है—

---

५१. (सोमप इन्द्र) हे वीरता के सोमरस का पान करनेवाले मेरे आत्मन्, (इदं शृणुहि) यह सुन ले, (यत् त्वा) जो तुझे (शोचता हृदा) देदीप्त हृदय के साथ (जोहवीमि) पुकार-पुकार कर कह रहा हूँ। (वृश्चामि तम्) काट डालूँगा उसे, (इव) जैसे (कुलिशेन) कुल्हाड़े से (वृक्षम्) वृक्ष को, (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है।

५२. (मनस्पाप) ओ मन के पाप! (परः अपेहि) परे हट, (किम्) क्यों (अशस्तानि) निन्दित (शंससि) सलाहें दे रहा है? (परेहि) दूर भाग जा, (त्वा) तुझे (न कामये) नहीं चाहता हूँ। (वृक्षान्) पेड़ों पर (वनानि) जङ्गलों में (संचर) भटकता फिर। (मे मनः) मेरा मन तो (गृहेषु) गृह-कार्यों में और (गोषु) गौओं के पालन में [लगा हुआ है]।

५३. जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान्। निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः॥ —अथर्व० ९।२।१०

जाग, जाग, ओ मेरे सङ्कल्प-बल, तू जाग। राक्षसों को मार गिरा, उन्हें घोर अन्धकार में धकेल दे। वे आततायी निरिन्द्रिय और निर्वीर्य हो जाएँ, एक दिन को भी जीवित न बचने पावें।

५४. यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥ —अथर्व० ९।२।२०

जितना द्यावापृथिवी का विस्तार है, जितने विस्तार में जल बहते हैं, जितने विस्तार में अग्नि फैलता है, हे सङ्कल्प, तू उससे भी अधिक बड़ा है, तू सदा महान् है। तेरी शक्ति के प्रति मैं नमन करता हूँ।

५५. न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महान् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥ —अथर्व० ९।२।२४

---

५३. (काम) ऐ मेरे सङ्कल्प-बल, (त्वं) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उन्हें (जहि) मार गिरा, (एनान्) इनको (अन्धा तमांसि) घोर अन्धकार में (अव पादय) गिरा दे। (सर्वे) सब (निरिन्द्रियाः) इन्द्रिय-हीन और (अरसाः) निर्वीर्य (सन्तु) हो जाएँ, (ते) वे (कतमच्चन अहः) एक दिन को भी (मा जीविषुः) जिन्दा न बचें।

५४. (द्यावापृथिवी) आकाश-धरती (वरिम्णा) विस्तार में (यावती) जितने बड़े हैं, (यावत्) जितने विस्तार में (आपः सिष्यदुः) जल बहते हैं, (यावत्) जितने विस्तार में (अग्निः) आग फैलती है, (ततः) उससे भी (त्वम्) तू (ज्यायान्) अधिक बड़ा है (विश्वहा) सदा (महान्) महान् है, (तस्मै ते) उस तुझको (काम) हे सङ्कल्प (नमः इत्) नमन ही (कृणोमि) करता हूँ।

५५. (न वै) न (वातः चन) वायु भी (कामम्) सङ्कल्प को (आप्नोति) पहुँच सकता है, (न अग्निः सूर्यः) न अग्नि और सूर्य, (न उत चन्द्रमाः) न ही चन्द्रमा। (ततः) उनसे भी (त्वम्) तू (ज्यायान् असि) अधिक बड़ा है, (विश्वहा) सदा (महान्) महान् है। (तस्मै ते)

न वायु महिमा में तुझ सङ्कल्प तक पहुँच सकता है, न अग्नि, न सूर्य, न ही चन्द्रमा। उन सबसे हे सङ्कल्प, तू अधिक बड़ा है, तू सदा महान् है। उस तेरे प्रति मैं नमन करता हूँ।

अस्तु, आइये, अब हम वेद के उन स्थलों पर दृष्टिपात करते हैं, जो विशेषरूप से प्रबल आशावाद और आत्म-विश्वास से ओतप्रोत हैं। यह वैदिक दृष्टि नहीं है कि मनुष्य यह समझे कि मैं तो दीन हूँ, हीन हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ और वह दीनता-भरे शब्दों में गिड़गिड़ाता फिरे। वेद तो कहता है कि हे मनुष्य, तेरे अन्दर अनन्त शक्ति का बीज निहित है, तू क्या नहीं कर सकता?

५६. दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ —अथर्व० २।११।१

हे नर, जो शक्ति तुझे दूषित करने आती है, उल्टा उसीको तू दूषित कर देनेवाला है। शस्त्र का तू शस्त्र है, वज्र का तू वज्र है। अपने आपको पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबरवालों से आगे बढ़।

५७. सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ —अथर्व० २।११।४

हे नर, तू तो विद्वान् है, वर्चस्वी है, शरीर-रक्षक है। अपने को पहचान, श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबरवालों से आगे बढ़।

५८. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥ —अथर्व० २।११।५

हे नर, तू तो शुद्ध है, तेजस्वी है, आनन्दमय है, ज्योतिष्मान् है। अपने को पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबरवालों से आगे बढ़।

उस तेरे सम्मुख (नमः इत्) नमन ही (कृणोमि) करता हूँ।

५६. हे नर, तू (दूष्याः) दूषक शक्ति का (दूषिः असि) दूषक है, तू (हेत्याः) तलवार की (हेतिः असि) तलवार है, तू (मेन्याः) वज्र का (मेनिः असि) वज्र है। (श्रेयांसं) श्रेष्ठों तक (आप्नुहि) पहुँच, (समम्) बराबरवाले से (अतिक्राम) आगे बढ़।

५७. हे नर, तू (सूरिः असि) विद्वान् है (वर्चोधाः असि) वर्चस्वी है, (तनूपानः असि) शरीर का रक्षक है।

५८. हे नर, तू (शुक्रः असि) शुद्ध है (भ्राजः असि) भ्राजमान है, (स्वः असि) आनन्दमय है, (ज्योतिः असि) ज्योतिःस्वरूप है।

५९. उत्क्रामातः पुरुष मावं पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ॥

—अथर्व० ८।१।४

हे नर, उन्नति कर, अवनत मत हो, मौत की बेड़ी को काट डाल।

६०. उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।

—अथर्व० ८।१।६

हे नर, देख, जीवन में तेरी उन्नति होनी चाहिए, अधोगति नहीं। तेरे अन्दर मैं जीवन और बल फूँकता हूँ।

६१. इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा।

—अथर्व० ८।८।२४

इधर विजय पा, उधर विजय पा, कमाल की विजय हासिल कर। जीत, जीत, जीत, हर क्षेत्र में जीत, शाबाश!

जैसे हनुमान को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं था, वैसे ही मनुष्य भी अपनी शक्ति को पहचानता नहीं। वेद उसे जगाकर कहता है कि तेरे अन्दर तो अपार शक्ति प्रसुप्त पड़ी है, उसे पहचान और आगे बढ़। जब मनुष्य अपनी इस शक्ति को पहचान लेता है, तब फिर वह जगह-जगह दीनतापूर्वक क्रन्दन करता नहीं फिरता। वह किस प्रकार अपनी वीरता के गान गाने लगता है वेद में इसका नमूना भी देखिए—

६२. अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद् धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।

—ऋग्० १०।४८।५

---

५९. (पुरुष) हे पुरुष, (अतः) इस वर्त्तमान अवस्था से (उत्क्राम) ऊपर उठ, (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः) मौत की (पड्वीशम्) बेड़ी को (अवमुञ्चमानः) काटकर नीचे गिरा दे।

६०. (पुरुष) हे पुरुष, (ते उद्-यानम्) तेरी उन्नति हो, (न अवयानम्) अधोगति नहीं। (ते) तेरे लिए (जीवातुं) जीवन को और (दक्षतातिम्) बल को (कृणोमि) रचता हूँ।

६१. (इतः जय) इधर जीत, (इतः विजय) इधर विजय पा, (संजय) कमाल की जीत हासिल कर, (जय) सर्वत्र जीत, (स्वाहा) शाबाश!

६२. (अहम् इन्द्रः) मैं इन्द्र हूँ, अद्वितीय वीर हूँ, (इत्) निश्चय ही (धनम्) धन को (न पराजिग्ये) हार नहीं सकता, (कदाचन) कभी

सुनो मेरा परिचय, मैं इन्द्र हूँ, बाँका वीर हूँ, धन को कभी हार नहीं सकता। यों आसानी से कभी मरनेवाली नहीं हूँ।

६३. अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥

—अथर्व० १२।१।५४

मैं साहसी हूँ, वीर हूँ, भूमि में उत्कृष्ट हूँ, दुश्मन से मुकाबला पड़ने पर उसके छक्के छुड़ा देनेवाला हूँ। सब शत्रुओं को परास्त कर डालने की शक्ति मुझमें है। जिस दिशा में कदम बढ़ाऊँगा, दुष्टों को पकड़-पकड़ कर मसल डालूँगा।

६४. यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः॥

—अथर्व० १२।१।५८

जिससे बात करता हूँ, मीठा बोलता हूँ; जिसकी ओर दृष्टि करता हूँ, वह मुझसे स्नेह करने लगता है। एक ओर तो मेरा यह मधुर रूप है; किन्तु साथ ही ऐसा तेजस्वी और वेगवान् भी हूँ कि जो दुष्ट मुझे अपना क्रोध दिखाते हैं, उन्हें बात की बात में मार गिराता हूँ।

अरे, मत समझो कि मैं क्षुद्र शक्तिवाला हूँ—

६५. बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः।

—अथर्व० १६।३।५

(मृत्यवे न अवतस्थे) मौत का विषय नहीं बनता।

६३. (अहम्) मैं (सहमानः) साहसी (अस्मि) हूँ, (भूम्याम्) भूमि पर (उत्तरः नाम अस्मि) बड़ा ही उत्कृष्ट प्रसिद्ध हूँ। मैं (अभी-षाड् अस्मि) मुकाबले में आये हुए को परास्त कर देनेवाला हूँ। (विश्वा-षाड्) सबको परास्त कर देनेवाला हूँ। (आशाम् आशाम्) प्रत्येक दिशा में (वि-षासहिः) बड़ी ही विशेषता के साथ खूब-खूब कई-कई बार परास्त कर देनेवाला हूँ।

६४. (यत् वदामि) जो कुछ बोलता हूँ (तद्) वह (मधुमत्) मीठा (वदामि) बोलता हूँ, (यत्) जो (ईक्षे) देखता हूँ, (तद्) तो (मा) मुझे वनन्ति) [सब] चाहने लगते हैं। पर साथ ही मैं (त्विषीमान्) तेजस्वी और (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूँ। (दोधतः) क्रोध दिखानेवाले (अन्यान्) शत्रुओं को (अवहन्मि) मार गिराता हूँ।

६५. (मे आत्मा) मेरा आत्मा (बृहस्पतिः) बड़ी भारी शक्ति का

मेरा आत्मा बड़ा विशाल है, मेरे मन के अन्दर कमाल की नेतृत्व-शक्ति भरी पड़ी है। मैं सबका प्रिय भी हूँ।

६६. असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः। समुद्रो अस्मि विधर्मणा॥

—अथर्व० १६।३।६

मेरे हृदय में सन्ताप के लिए स्थान नहीं है, मेरी इन्द्रियों की शक्ति बड़ी विस्तृत है, गुणों का मैं समुद्र हूँ।

६७. परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाऽहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च। मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥

—अथर्व० १७।१।२८

वेद-ज्ञान का कवच मैं पहने हुए हूँ, सूर्य की ज्योति और प्रताप से मैं भासमान हूँ। दैवी विपत्तियाँ मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, मानवी विपत्तियों का तो कहना ही क्या है।

६८. यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात्सर्वं तन्नो अधस्पदम्॥

—अथर्व० २।७।२

शत्रु का शाप हो, चाहे बन्धु का शाप हो और भले ही स्वयं ब्रह्मा भी क्रोध होकर शाप दे डालें, सबको मैं पादाक्रान्त कर दूँगा।

भण्डार है, मैं (नृमणाः नाम) नेतृत्व-शक्ति से भरे मनवाला हूँ, (हृद्यः) सबके हृदय को प्रिय लगनेवाला हूँ।

६६. (मे हृदयम्) मेरा हृदय (असंतापम्) सन्ताप-रहित है। (गव्यूतिः) इन्द्रियों की गति (उर्वी) विशाल है। (विधर्मणा) विशेष-विशेष गुणों से (समुद्रः अस्मि) समुद्र हूँ।

६७. (अहम्) मैं (ब्रह्मणा वर्मणा) वेद-ज्ञान के कवच से, (कश्यपस्य) सूर्य की (ज्योतिषा) ज्योति से (वर्चसा च) और प्रताप से (परीवृतः) घिरा हुआ हूँ। (याः दैव्याः इषवः) जो दैवी वाण हैं वे (मा) मुझे (मा-प्रापन्) नहीं प्राप्त हो सकते [अर्थात् देवी विपत्तियाँ मुझे चलायमान नहीं कर सकतीं], (मा) न ही (वधाय) मारने के लिए (अवसृष्टाः) छोड़े हुए (मानुषीः इषवः) मनुष्यों के बाण [अर्थात् मनुष्य-जन्य आपत्तियाँ भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं]।

६८. (यः च) जो भी (सापत्नः) शत्रु का (शपथः) शाप है, (यः च) और जो (जाम्याः) बन्धु का (शपथः) शाप है, और (यत्) यदि (ब्रह्मा) ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण भी (मन्युतः) क्रोध से (शपात्) शाप दे डालता

६९. शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि॥
—अथर्व० २।७।५

मुझे शाप देनेवाले दुष्ट मनुष्य का शाप उल्टा उसी पर जाकर पड़ेगा। मैं तो उसके पक्ष में हूँ, जो शुभ हृदयवाला है। आँखों से सैन चलानेवाले दुष्ट-हृदयी दुर्जन की हड्डी-पसली तोड़ दूँगा।

मत समझो कि यह चार-पाँच फीट का छोटा-सा शरीर भला क्या कर लेगा।

७०. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि॥ —अथर्व० ५।९।७

यह मेरी देखने में छोटी-सी लगनेवाली आँख शक्ति में छोटी नहीं, किन्तु सूर्य के बराबर है। मेरी प्राण-शक्ति का अनुमान करना हो तो इस अपार वायु-मण्डल से कर लो। मेरे शरीर के मध्यभाग की तुलना अन्तरिक्ष से कर सकोगे और मेरा यह छोटे से कदवाला शरीर, देखने में छोटा होता हुआ भी शक्ति में छोटा नहीं, किन्तु समूची पृथिवी के बराबर है। मैं अविनश्वर हूँ, किसी के मारे मर नहीं सकता।

ये हैं वैदिक वीर के उद्‌गार। कई मनुष्य किसी भी कार्य को बड़े निरुत्साह के साथ आरम्भ करते हैं। पहले से ही वे सोचने लगते हैं कि अरे, यह काम तो बड़ा कठिन है, मुझसे यह कैसे हो सकेगा, मैं तो बड़ा अल्प शक्तिवाला हूँ, मेरे तो यह बस का नहीं है। पर यह वैदिक भावना नहीं है। वेद के अनुसार तो मनुष्य को सदा उत्साही और आत्म-विश्वासी होना चाहिए।

है, तो (सर्वं तत्) वह सब (नः अधस्पदम्) हमारे पादाक्रान्त हो जाएगा।

६९. (शप्तारम्) शाप देनेवाले पर ही (एतु) जाए (शपथः) शाप। (यः सुहार्त्) जो शुभ हृदयवाला है, (तेन) उससे (नः सह) हमारा साथ है। (चक्षुर्मन्त्रस्य) आँखों से सैन चलानेवाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवाले की (पृष्टीः) हड्डी-पसलियाँ (अपि-शृणीमसि) तोड़ डालेंगे।

७०. (सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य के सदृश मेरी आँख है, (वातः प्राणः) वायु के सदृश मेरा प्राण है। (अन्तरिक्षम् आत्मा) अन्तरिक्ष के सदृश मेरा मध्यभाग है। (पृथिवी शरीरम्) पृथिवी के सदृश मेरा शरीर है। (अयम् अहम्) यह मैं (अस्तृतः नाम अस्मि) अमर प्रसिद्ध हूँ।

देखिए, इस मन्त्र में एक वीर मनुष्य कार्य को आरम्भ करते समय कैसी उत्साह की भावना प्रकट कर रहा है।

७१. अयुतोऽहमयुतो म आत्माऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम्। अयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥ —अथर्व० १९।५१।१

अरे मैं एक नहीं दस हज़ार हूँ। दस हज़ार मिलकर जिस काम को कर सकते हैं, उसे मैं अकेला कर लूँगा। मेरे अन्दर दस हज़ार के बराबर आत्मबल है, मेरी आँखों-कानों की शक्ति दस हज़ार के बराबर है, मुझमें प्राण-बल दस हज़ार है, मुझमें अपान-बल और व्यान-बल दस हज़ार है। क्या-क्या गिनाऊँ, मेरा एक-एक अङ्ग—आँख, नाक, कान, मुख, हाथ, पैर, मन, बुद्धि, आत्मा सभी दश-सहस्त्र-गुणित शक्ति से आपूरित हैं। मैं क्या नहीं कर सकूँगा? कौन-सा काम मेरे लिये भला असाध्य है?

७२. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे॥ —अथर्व० १९।५१।२

मैं इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूँ, सविता प्रभु से प्रेरणा पाकर इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूँ। मत समझो कि मैं अपनी इन छोटी-छोटी भुजाओं से क्या कर सकूँगा। ये छोटी-छोटी भुजाएँ ही शक्ति में द्यौ और पृथिवी के बराबर हैं, द्यावापृथिवी की तरह व्यापक और विशाल मेरी भुजाएँ हैं। मेरी एक भुजा द्यौ है,

---

७१. (अहम्) मैं अकेला (अयुतः) दस हज़ार के बराबर हूँ। (मे आत्मा) मेरा आत्मा (अयुतः) दस हज़ार के बराबर है। (मे चक्षुः अयुतम्) मेरी आँख दस हज़ार के बराबर है। (मे श्रोत्रम् अयुतम्) मेरा कान दस हज़ार के बराबर है। (मे प्राणः अयुतः) मेरा प्राण दस हज़ार के बराबर है। (मे अपानः अयुतः) मेरा अपान दस हज़ार के बराबर है। (मे व्यानः अयुतः) मेरा व्यान दस हज़ार के बराबर है। (अहं सर्वः) मैं सारा-का-सारा (अयुतः) दस हज़ार के बराबर हूँ।

७२. हे कर्म, (सवितुः देवस्य) प्रेरक परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा से (प्रसूतः) प्रेरित होकर, मैं (अश्विनोः बाहुभ्याम्) द्यावापृथिवी के सदृश अपनी भुजाओं से और (पूष्णः हस्ताभ्याम्) 'पूषा' सूर्य के से हाथों से (त्वा) तुझे (आरभे) प्रारम्भ करता हूँ।

तो दूसरी भुजा पृथिवी है। हाँ, हाँ, द्यौ और पृथिवी के बराबर मेरी भुजाएँ हैं। मत सोचो कि इन छोटे-छोटे बिलस्त भर के हाथों से मैं क्या कर सकूँगा। ये मेरे हाथ नहीं 'पूषा' के हाथ हैं। पूषा सूर्य के कर जैसे चारों ओर फैले हुए विशाल अन्धकार को पलभर में एक तरफ समेट कर रख देते हैं और १०-१२ घण्टे के थोड़े से समय के लिए ही भूमण्डल पर आकर कितने कितने कार्य सिद्ध कर जाते हैं, वैसे ही सक्षम और कार्यसाधक मेरे हाथ हैं। ऐसे विशाल हाथों से और ऐसी विशाल भुजाओं से, हे कर्म, मैं तुझे आज प्रारम्भ करता हूँ।

यह है वेदोक्त भावना। इस वीर-भावना से ओतप्रोत हो कर जो लोग कार्य प्रारम्भ करते हैं, वे मध्य में आनेवाली सब विघ्न-बाधाओं को चीरते हुए आगे बढ़ते चलते हैं और अन्त में कार्य-सिद्धि तथा विजय-लक्ष्मी के भागी बनते हैं।

अस्तु, अन्त में प्रबल पुरुषार्थ की भावना का नस-नस में संचार कर देनेवाले, वैदिक कर्मयोग के प्रतीकरूप निम्न मन्त्र से प्रेरणा ग्रहण कीजिए—

७३. कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥

—अथर्व० ७।५०।८

मैं हाथ पर हाथ धर कर बैठनेवाला नहीं हूँ। मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय रखी है। इस 'कर्म' रूपी जादू की छड़ी हाथ में लेते ही गौ, घोड़े, धन-धान्य, सोना-चाँदी जो चाहूँगा सो मेरे आगे हाथ बाँधकर खड़ा हो जाएगा।

७४. मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्॥

—अथर्व० ७।८२।२

---

७३. (मे) मेरे (दक्षिणे हस्ते) दाहिने हाथ में (कृतम्) कर्म है, (मे सव्ये) मेरे बाएँ हाथ में (जयः आहितः) विजय धरी है। इस कर्म द्वारा मैं (गोजिद्) गो-विजयी, (अश्वजित्) अश्व-विजयी, (धनञ्जयः) धन-विजयी, (हिरण्यजित्) हिरण्य-विजयी (भूयासम्) हो जाऊँ।

७४. (मयि) अपने अन्दर मैं (अग्रे) सर्वप्रथम (अग्निम्) कर्मयोग की अग्नि को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ, (क्षत्रेण) क्षात्रबल, (वर्चसा)

मैं अपने अन्दर कर्मयोग की अग्नि को ग्रहण करता हूँ, छात्रबल, ब्रह्मवर्चस और मनोबल को ग्रहण करता हूँ। सद्विचार की प्रजा को अपने अन्दर धारण करता हूँ, दीर्घायुष्य को धारण करता हूँ। तदर्थ मेरा जीवन समर्पित है। अपने अन्दर तेजस्विता की अग्नि प्रज्वलित करता हूँ।

ब्रह्मवर्चस और (बलेन) मनोबल के साथ। (मयि) अपने अन्दर (प्रजाम्) सद्विचार की प्रजा को, (मयि) अपने अन्दर (आयुः) दीर्घायुष्य को (दधामि) धारण करता हूँ। तदर्थ (स्वाहा) मेरा जीवन समर्पित है। (मयि) अपने अन्दर (अग्निम्) तेजस्विता की अग्नि को [प्रज्वलित करता हूँ]।

उद्बोधन

ऋतस्य धारा अनुतृन्धि पूर्वीः।

—ऋग्० ५।१२।२

"हे वीर, सत्य की प्रशस्त धाराएँ प्रवाहित कर।"

१. उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥

—ऋग्० १०।१०१।१

उठो, जागो, हे भाइयो, मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ। एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की अग्नि को प्रदीप्त करो। तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस 'अग्नि' का आह्वान करता हूँ, जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस 'उषा' का आह्वान करता हूँ, जिससे जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं। अपने जीवनों को 'अग्निमय' बनाओ, अपने जीवनों को 'ज्योतिर्मय' बनाओ।

२. मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥

—ऋग्० १०।१८।२

हे भाइयो, उठो, मौत के पैर को परे धकेल दो, श्रेष्ठ लम्बी आयु धारण करो। धन-धान्य तथा प्रजा से फूलो-फलो और शुद्ध-पवित्र तथा परोपकारी जीवनवाले बनो।

३. अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥

—अथर्व० १२।२।२६

---

१. (सखायः) हे मित्रो! (उद्बुध्यध्वम्) उठो, जागो, (समनसः) मनोबल से युक्त होओ, (सनीळाः) एक निवासस्थानवाले (बहवः) बहुत-से तुम सब (अग्निम्) [उत्साह की] अग्नि को (समिन्ध्वम्) प्रदीप्त करो। (दधिक्राम्) जिसे धारण करके मनुष्य क्रियाशील हो जाता है, ऐसी (अग्निम्) उत्साहाग्नि को (देवीम् उषसं च) और प्रकाशमयी उषा को (इन्द्रावतः वः) तुम प्रभु-भक्तों की (अवसे) रक्षा के लिए (निह्वये) बुलाता हूँ।

२. (ऐत) आओ, (यत् मृत्योः पदम्) जो मृत्यु का पैर है उसे (योपयन्तः) परे धकेलते हुए, (प्रतरम्) श्रेष्ठ (द्राघीयः) लम्बी (आयुः) आयु को (दधानाः) धारण करते हुए (प्रजया) सन्तान और (धनेन) धन से (आप्यायमानाः) समृद्धि को पाते हुए (शुद्धाः) शरीर से शुद्ध, (पूताः) मन से पवित्र और (यज्ञियासः) परोपकारी जीवनवाले (भवत) होओ।

३. (अश्मन्वती) पथरीली नदी (रीयते) वेग से बह रही है,

उठो मित्रो, देखो, वह सामने अनेक विघ्न-बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है। उठो तैयार हो जाओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो, मिलकर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ। जो खोटी चालें हैं, उन्हें यहीं छोड़ दो। आओ विघ्न-बाधाओं की इस भयङ्कर नदी के पार उतरकर रोग-रहित ऐश्वर्य-सुख का उपभोग करें।

हे मनुष्य! जाग उठ, जाग उठ, सोया मत पड़ा रह।

४. **इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।**
यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥ —ऋग्० ८।२।१८

जो व्यक्ति जागकर शुभ कर्मों में लगता है, उसी को देवता चाहते हैं। सोये पड़े रहनेवाले से वे प्रीति नहीं करते। अच्छी तरह समझ ले, प्रमादी की कोई सहायता नहीं करता।

५. **यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥** —ऋग्० ५।४४।१४

"जो जागा हुआ है, वही ऋचाओं से कुछ लाभ ले सकता है। जो जागा हुआ है, उसी की सामवेद के मन्त्र सहायता करते हैं।

(सखायः) मित्रो, (उत्तिष्ठत) उठो, (संरभध्वम्) मिलकर उद्यम करो, और उसे (प्रतरत) तैर जाओ। (अत्र जहीत) यहीं छोड़ दो (ये) जो (असन्) हैं (दुरेवाः) खोटी चालें। इस प्रकार (अनमीवान्) रोग-रहित (वाजान्) ऐश्वर्यों को (अभि) पाने के लिए (उत्तरेम) [हम सब] नदी के उस पार पहुँच जाएँ।

४. (देवाः) देवता (सुन्वन्तम्) शुभ कर्म करनेवाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं, वे (स्वप्नाय) सोये पड़े रहनेवाले की (न स्पृहयन्ति) स्पृहा नहीं करते, प्रत्युत (अतन्द्राः) प्रमाद रहित वे देव (प्रमादम्) प्रमादी का (यन्ति) नियमन करते हैं।

५. (यः जागार) जो जागा रहता है (तम् उ) उसी से (ऋचः) ऋचाएँ (कामयन्ते) प्रीति करती हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है (तम् उ) उसी के पास (सामानि) सामवेद के मन्त्र (यन्ति) सहायतार्थ पहुँचते हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है (तम्) उसे (अयं सोमः) यह चन्द्रमा (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) तेरे साथ एक घरवाला होकर (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अस्मि) हूँ।

जो जागा हुआ है, उसी के आगे चाँद मैत्री के लिये हाथ पसारता है।'' उसी की यह सारी प्रकृति दासी बनती है जो जागा हुआ है, जो जागा हुआ है। इसलिए—

६. **उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।**
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय॥

—अथर्व० १९।६३।१

उठ खड़ा हो, जाग जा, ऐ ज्ञानी, यज्ञ द्वारा अपने अन्दर देवभावों को जगा ले। अपनी आयु को, प्राण को, प्रजा को, कीर्ति को बढ़ा, पशुओं को बढ़ा, यज्ञ करनेवाले को बढ़ा।

हे नर, तू वीर बन, निरुत्साहित मत हो। यदि अचानक कभी क्षण दो क्षण के लिये तू हतोत्साह भी हो बैठे तो—

७. **आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।**
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ —ऋग्० १०।५७।४

पुनः तेरे अन्दर मनोबल संचरित हो जाये, ताकि तू कर्म कर सके, बली बने, जीवित-जागृत होकर रहे और चिरञ्जीवी होकर चिरकाल तक सूर्योदय के रमणीक दृश्य को देखता रहे।

८. **समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी।**
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव॥

—अथर्व० ६।८६।२

---

६. (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानी, (उत्तिष्ठ) उठ, जाग, अपने अन्दर (देवान्) देवभावों को (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (बोधय) जगा। (आयुः) अपनी आयु को, (प्राणम्) प्राण को, (प्रजाम्) सन्तान को, (पशून्) पशुओं को, (कीर्त्तिम्) कीर्त्ति को, (यजमानं च) और यज्ञ करनेवाले को (वर्धय) बढ़ा।

७. (ते) तेरे अन्दर (पुनः) फिर (मनः) मनोबल (आ-एतु) आ जाए, (क्रत्वे) कर्म के लिए, (दक्षाय) बल के लिए, (जीवसे) जीवन के लिए (च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य के दर्शन के लिए।

८. (समुद्रः) समुद्र (स्रवताम्) नदियों का (ईशे) राजा है, (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी का (वशी) राजा है, (चन्द्रमा) चाँद (नक्षत्राणाम्) तारों का (ईशे) राजा है। ऐसे ही हे नर, (त्वम्) तू (एकवृषः) सर्वश्रेष्ठ, सबका राजा (भव) हो जा।

हे मनुष्य, तू सर्वश्रेष्ठ हो जा, सबका राजा बन जा। 'देख जैसे यह समुद्र नदियों का राजा बना हुआ है, यह अग्नि पृथिवी का राजा बना हुआ है, यह चन्द्रमा नक्षत्रों का राजा बना हुआ है, वैसे ही तू भी सबका राजा बन जा।'

९. इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि॥ —ऋग्० ८।१७।९

हे वीर, अग्रगामी बन, अपने प्रताप से जगत् का राजा हो जा। हे पापनाशक, पापों को संसार से मिटा दे।

१०. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहाऽमृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व॥
—अथर्व० १३।१।३४

हे मनुष्य, तू उन्नत हो, उन्नत हो, इतना उन्नत हो कि आस्मान में जा चढ़। पृथिवी पर सबसे उन्नत हो, राष्ट्र में सबसे उन्नत हो, धन-दौलत में सबसे उन्नत हो, प्रजा में सबसे उन्नत हो, अमृत-प्राप्ति में सबसे उन्नत हो, उन्नति में तू सूर्य को छू ले।

११. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि॥
—अथर्व० १३।२।२९

---

९. (इन्द्र) हे वीर, (त्वम्) तू (पुरः प्रेहि) आगे-आगे बढ़, (ओजसा) अपने प्रताप से (विश्वस्य ईशानः) संसार का राजा बन जा। (वृत्रहन्) हे पापनाशक, (वृत्राणि जहि) पापों को मिटा दे।

१०. हे नर, तू उन्नति करता-करता (दिवं रोह) आसमान में चढ़ जा, (पृथिवीं च रोह) पृथिवी पर सबसे ऊँचा हो जा, (राष्ट्रं च रोह) राष्ट्र में सबसे ऊँचा हो जा, (द्रविणं च रोह) धन-दौलत में सबसे ऊँचा हो जा, (प्रजां च रोह) सन्तान की दृष्टि से सबसे ऊँचा हो जा, (अमृतं च रोह) अमृत प्राप्ति में सबसे ऊँचा हो जा, [इतना ऊँचा हो जा कि] (रोहितेन) सूर्य से (तन्वम्) शरीर को (संस्पृशस्व) छुआ ले।

११. (सूर्य) हे सूर्य से तुलना किये जानेवाले नर, (बट्) सचमुच (महान् असि) तू महान् है, (आदित्य) हे अदिति के पुत्र, हे अमृत-पुत्र, (बट्) सचमुच ही (महान् असि) तू महान् है। (महतः ते) तुझ महान् की (महिमा) महिमा (महान्) महान् है। (आदित्य) हे अमृत-पुत्र, (त्वं महान् असि) तू महान् है।

"हे सूर्य-सदृश उच्चतावाले नर, तू महान् है। सचमुच ऐ अमृतपुत्र, तू महान् है। तुझ महान् की महिमा महान् है। हे अमृतपुत्र, तू महान् है।" यदि अपनी इस महत्ता को तू सदा स्मरण रखेगा, तो कभी तू पतन की ओर नहीं जा सकता।

१२. हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्। अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य॥—अथर्व० १९।६५।१

हे नर, कान्ति में तू सूर्य है, सूर्य के सदृश ऊँची उड़ान लेनेवाला है। तू उन्नति के विशाल आकाश में पहुँच जा। उन्नति के आकाश की ओर अग्रसर होते हुए तेरे मार्ग में जो भी विघ्न डालना चाहे, उसे तू अपने असीम तेज से चकाचौंध करके नीचे गिरा दे। देख, भयभीत मत हो, अपनी अनुपम दुर्दमनीय ज्योति को लिये हुए तू उन्नति की ओर अग्रसर होता जा, होता जा और अन्त में शिखर पर पहुँच जा।

मत डर कि उन्नति का पथ कण्टकाकीर्ण है—

१३. अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज॥ —ऋग्० १।४२।३

जो कोई चोर, कुटिल, पापी राक्षस तेरे मार्ग में रास्ता रोक कर खड़ा हो, उसे तू पकड़ कर रास्ते से दूर फेंक दे।

---

१२. (सूर्य) हे सूर्य-प्रभ नर, (हरिः) दोषों का हर्ता (सुपर्णः) उत्तम पङ्खोंवाला—ऊँचा उड़नेवाला तू (अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) उन्नति के द्युलोक में (आरुहः) चढ़ जा। (दिवम् उत्पतन्तम्) द्यौ की तरफ ऊपर उड़ते हुए (त्वा) तुझे (ये) जो (दिप्सन्ति) दबाना चाहें (तान्) उनको (जातवेदः) हे ज्ञानी, तू (हरसा) अपनी ज्योति से (अवजहि) मार गिरा, (अबिभ्यत्) न डरता हुआ (उग्रः) प्रतापी तू (अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) द्युलोक में, उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर (आरोह) चढ़ जा।

१३. (त्यम्) उस (परिपन्थिनम्) रास्ता रोककर खड़े हो जानेवाले (मुषीवाणम्) चोर, (हुरश्चितम्) कुटिल को (स्रुतेः अधि) मार्ग से (अप अज) दूर फेंक दे।

१४. अपघ्नन्त्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम्॥ —ऋग्० ९।६३।२९

हे वीरता के देव, राक्षसों का विध्वंस करता हुआ, गर्जता हुआ आगे बढ़। जाज्वल्यमान उत्तम बल को प्राप्त कर।

१५. सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासाऽन्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान
तेजसा दिश उद्दृंह॥ —यजुः० १७।७२

हे नर, तू सुपर्ण है, ऊँची उड़ान लेनेवाला है, ऊँची महत्वाकांक्षावाला है। तू 'गरुत्मान्' है, गुरु आत्मावाला है। पृथिवी के सिंहासन पर बैठ। वहाँ बैठकर ऐसा चमक कि अपनी चमक से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण कर दे; अपनी जगमग करती हुई ज्योति से द्युलोक को थाम ले; अपने तेज से दिशाओं को उठा ले।

१६. सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य
वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण। क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि॥
—यजुः० १०।१७

हे नर, तुझे चन्द्रमा की ज्योति से अभिषिक्त करता हूँ, अग्नि के तेज से अभिषिक्त करता हूँ, सूर्य की कान्ति से अभिषिक्त करता

---

१४. (सोम) हे वीरता के देव, (रक्षसः अपघ्नन्) राक्षसों का विध्वंस करता हुआ, (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (अभ्यर्ष) आगे बढ़। (द्युमन्तम्) जाज्वल्यमान, (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्ट (शुष्मम्) बल (अभ्यर्ष) प्राप्त कर।

१५. हे मनुष्य, (सुपर्णः असि) तू उत्तम पङ्खोंवाला, ऊँची उड़ानें लेनेवाला है, (गरुत्मान् असि) महान् आत्मावाला है, तू (पृथिव्याः पृष्ठे) पृथिवी के पृष्ठ पर (सीद) बैठ, (भासा) अपनी चमक से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृण) भर दे, (ज्योतिषा) ज्योति से (दिवम्) द्युलोक को (उत्तभान) ऊपर थाम ले, (तेजसा) तेज से (दिशः) दिशाओं को (उद्-दृंह) ऊपर उठा ले।

१६. हे नर, (त्वा) तुझे (सोमस्य) चन्द्रमा के (द्युम्नेन) तेज से, (अग्नेः) अग्नि के (भ्राजसा) तेज से, (सूर्यस्य) सूर्य की (वर्चसा) कान्ति से, (इन्द्रस्य) इन्द्र के (इन्द्रियेण) बल से (अभिषिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूँ। तू (क्षत्राणां पतिः) क्षत्र-पति (एधि) बन, (दिद्यून्) वाणों को (अति) अतिक्रमण करके, विफल करके (पाहि) आत्म-रक्षा करता रह।

हूँ, इन्द्र की शक्ति से अभिषिक्त करता हूँ। तू क्षत्रपति बन। शत्रु के बाणों को विफल करता हुआ आत्म-रक्षा करता रह।

१७. मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः॥

—यजुः० ६।३५

भयभीत मत हो, पथ से विचलित मत हो, बल धारण कर। ये दृढ़ द्यावापृथिवी तुझे दृढ़ता का पाठ पढ़ाएँ, तेरे अन्दर बल धारण करायें। देख, पाप को संसार से मिटा, आनन्द और शान्ति के अमृत-रस को नहीं।

१८. मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। माकीं ब्रह्मद्विषो वनः॥

—अथर्व० २०।२२।२

मूढ़, भक्षक, उपहासकारी लोग तुझे अपने चंगुल में न फँसा सकें। ब्रह्मद्वेषियों का कभी सङ्ग मत कर।

१९. क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि। मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः॥

—यजुः० २०।१

हे वीर, तू क्षात्र-बल का भण्डार है। तू क्षात्र-बल का केन्द्र है। देख, कोई तेरी हिंसा न करने पाये। तू भी कभी हम निर्दोषों की हिंसा मत कर।

---

१७. हे नर, (मा) मत (भेः) भयभीत हो, (मा) मत (संविक्थाः) विचलित हो, (ऊर्जम्) बल (धत्स्व) धारण कर। (धिषणे) हे द्यावापृथिवी, (वीड्वी सती) दृढ़ होते हुए तुम (वीडयेथाम्) इसे दृढ़ता प्रदान करो, इसके अन्दर (ऊर्जम्) बल (दधाथाम्) धारण कराओ। हे नर, याद रख, (पाप्मा) पाप (हतः) तुझसे मारा जाए, (न सोमः) आनन्द-रस नहीं।

१८. (मा त्वा) मत तुझे (मूराः) मूढ़, (अविष्यवः) भक्षक और (उपहस्वानः) उपहासकारी लोग (आदभन्) वश में कर सकें। (माकीम्) कभी नहीं (ब्रह्मद्विषः) ब्रह्मद्वेषियों का (वनः) सङ्ग कर।

१९. तू (क्षत्रस्य) क्षात्र-बल का (योनिः) घर (असि) है, तू (क्षत्रस्य) क्षात्रबल का (नाभिः असि) केन्द्र है। कोई भी (त्वा) तेरी (मा हिंसीत्) हिंसा न करने पावे, (मा) न ही (मा) मेरी (हिंसीः) तू हिंसा कर।

२०. अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्। अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः॥ —ऋग्० १०।८३।३

आक्रमण कर, हे गर्वीले वीर, तू बलियों में बली है। अपने तप-तेज से शत्रुओं को विध्वस्त कर। अमित्रों का संहार कर, पापियों का संहार कर, दस्युओं का संहार कर। पापियों से जमा की हुई सब सम्पत्ति हमारे चरणों में लाकर रख दे।

२१. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं यो३स्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥ —यजुः० १।८

हे नर, तू मार सकनेवाला है, मार मारनेवाले को, मार उसे जो हम निरपराध लोगों को मारता है। उसे मार, जिसे हम मारने के लिये कटिबद्ध हैं। तू वीर है, देवजनों का नायक है। तू शुद्धतम है, पूर्णतम है, प्रियतम है, देवों का पूज्यतम है।

२२. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः। अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥ —ऋग्० ८।९९।५

---

२०. (अभीहि) आक्रमण कर, (मन्यो) हे गर्वीले वीर, (तवसः तवीयान्) तू बलियों में बली है। (तपसा युजा) अपने तप-तेज से (शत्रून्) शत्रुओं को (विजहि) विध्वस्त कर। (अमित्रहा) अमित्र का संहार करनेवाला, (वृत्रहा) पापियों का संहार करनेवाला (दस्युहा च) और दस्युओं का संहार करनेवाला (त्वम्) तू (विश्वा वसूनि) सब सम्पत्तियों को (नः आभर) हमारे पास ले आ।

२१. हे वीर, तू (धूः) मार सकनेवाला (असि) है, (धूर्व) मार (धूर्वन्तम्) मारनेवाले को, (धूर्व तम्) मार उसे (यः) जो (अस्मान्) हम [सज्जनों] को (धूर्वति) मारता है। (तं धूर्व) उसे मार (यम्) जिस दुष्ट को (वयम्) हम सज्जन लोग (धूर्वामः) मारने को तैयार हैं। तू (देवानाम्) देवजनों का (बह्नितमम्) सबसे बड़ा नायक, (सस्नितमम्) शुद्धतम, (पप्रितमम्) पूर्णतम, (जुष्टतमम्) प्रियतम, (देवहू-तमम्) देवजनों का पूज्यतम (असि) है।

२२. (इन्द्र) हे वीर, (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) मार-काट की लड़ाइयों

हे वीर, मार-काट मचने पर तू बड़े-बड़े हौसलेवालों के छक्के छुड़ा सकता है। अपयश तेरे पास नहीं फटकता। तू महान् रचयिता है, पर आवश्यकता पड़े तो विश्व का संहार भी कर सकता है। देख, विध्वंसियों की दाल मत गलने दे। जो तेरा वध करना चाहे, उसका संहार कर।

अरे, यह क्या? तू पाशों से जकड़ा पड़ा है!

२३. स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम्। प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते॥ —ऋग्० १०।३८।५

मैंने तो सुना है कि स्वयं तू अपने बन्धनों को काट फेंकनेवाला है, पराजित न होनेवाला है, सफलता पानेवाला है। घातक के पाश से अपने आपको मुक्त कर ले, कूद कर यहाँ आ जा। क्या तुझ जैसा वीर पाश-बद्ध रहने योग्य है?

२४. तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य। तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥ —ऋग्० ३।१८।२

हे मनुष्य! देख, तेरे दो प्रकार के शत्रु हैं। एक तो आन्तरिक

में (विश्वाः स्पृधः) सब बड़े-से-बड़े हौसलेवालों को (अभि-असि) पराजित कर सकता है। तू (अशस्तिहा) अपयश को पास न आने देनेवाला, (जनिता) रचयिता और (विश्वतूः) विश्व का संहार कर सकनेवाला (असि) है। (त्वम्) तू (तूर्य) संहार कर (तरुष्यतः) वध करना चाहनेवाले का।

२३. (स्ववृजम्) स्वयं अपने-आपको बन्धनों से छुड़ा लेनेवाला (त्वां) तुझे (अहम्) मैंने (वृषभ इन्द्र) हे बाँके वीर, (शुश्रव) सुना है, और (अनानुदम्) किसी से पराजित न होनेवाला तथा (रध्रचोदनम्) सफलता का प्रेरक [सुना है]। (प्रमुञ्चस्व) छुड़ा ले अपने-आपको (परि कुत्सात्) घातक से। (इह आगहि) यहाँ आ जा। (किमु) क्या (त्वावान्) तुझ जैसा (मुष्कयोः बद्धः) पाशों में बद्ध (आसते) रह सकता है।

२४. (अग्ने) हे अग्रणी वीर, तू (अन्तरान्) आन्तरिक (अमित्रान्) शत्रुओं को (सु तपो) अच्छी तरह से तपा डाल, (अररुषः) दान न देनेवाले, दूसरों को लाभ न पहुँचानेवाले (परस्य) शत्रु की (शंसम्)

शत्रु हैं, दूसरे बाहरी शत्रु हैं। तेरे अन्दर जो कभी-कभी निरुत्साह, प्रमाद, हिम्मत हार जाना आदि दुर्बलता के भाव आ जाते हैं, वे तेरे आन्तरिक शत्रु हैं। उन आन्तरिक शत्रुओं को तू सन्तप्त कर दे। साथ ही तू ऐसी वीरता दिखा कि जो दूसरे हानिकारक बाह्य शत्रु हैं, उनकी भी कुत्सित अभिलाषाएँ कभी फलीभूत न हो सकें। हे वीर, तू 'वसु' है, तू विवेकी है, सब अविवेकी शत्रुओं को तपा डाल। ऐसा तेजस्वी बन कि तुझसे तेज की किरणें निकल-निकल कर चारों ओर फैलती रहें।

२५. घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि॥ —ऋग्० ८।४३।२६

हिंसकों को मारता हुआ, द्वेषियों को कुचलता हुआ, राक्षसों को सदा दग्ध करता हुआ हे तेजस्वी वीर, तू अपने प्रखर तेज के साथ चमकता रह।

२६. उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥
—ऋग्० ३।३०।१७

अभिलाषा को (तप) तपा डाल, (वसो) हे उत्तम निवासयुक्त, (चिकितानः) विवेकयुक्त तू (अचित्तान्) हृदयहीन अविवेकी शत्रुओं को (तपो) संतप्त कर दे। (ते) तेरी [तेजोरश्मियाँ] (अजराः) अजर-अमर होती हुई (अयासः) सर्वत्र पहुँचनेवाली होती हुई (वि-तिष्ठन्ताम्) तुझमें विशेषरूप से स्थित रहें।

२५. (मृध्राणि) हिंसकों को (घ्नन्) मारता हुआ, (द्विषः) द्वेषियों को (अप-घ्नन्) कुचल फेंकता हुआ, (विश्वहा) सदा (रक्षांसि) राक्षसों को (दहन्) दग्ध करता हुआ (अग्ने) हे तेजस्वी वीर, तू (तिग्मेन) अपने प्रखर तेज से (दीदिहि) चमक।

२६. (इन्द्र) हे वीर! (रक्षः) राक्षस को (सहमूलं) जड़-समेत (उद्वृह) उखाड़ फेंक, इसके (मध्यम्) मध्य भाग को, छाती को (वृश्च) चीर डाल, (अग्रं) अग्रभाग को, सिर को (प्रति शृणीहि) तोड़ दे। इस (सललूकम्) चञ्चल को (आकीवतः) जिस किसी भी स्थान से, जहाँ कहीं भी वह हो वहीं से पकड़कर (चकर्थ) मार दे, [कृञ् हिंसायाम्, क्रयादि, लोडर्थे लिट्]। इस (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मद्वेषी पर (तपुषिम्) तेज (हेतिम्) वज्र को (अस्य) फेंक [असु क्षेपणे, दिवादि]।

हे वीर, राक्षस को समूल उखाड़ फेंक, उसकी छाती चीर दे, सिर तोड़ डाल। इस चंचल को जहाँ कहीं भी पाये, मार दे। इस ब्रह्मद्वेषी पर तीक्ष्णधार वज्र का प्रहार कर।

२७. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर॥

—ऋग्० ८।४५।४०; अथर्व० २०।४३।१

समस्त द्वेषियों को छिन्न-भिन्न कर दे, बाधा डालनेवाले सब हिंसकों को कुचल दे। वह अलौकिक ऐश्वर्य ला, जिसकी संसार स्पृहा करता है।

२८. अति धावताऽतिसरा इन्द्रस्य वचसा हत।
अविं वृकं इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि
प्राणमस्यापि नह्यत॥ —अथर्व० ५।८।४

दौड़ पड़ो हे अग्रगामी वीरो, अपने नायक की आज्ञा पाते ही शत्रु पर जा टूटो। राक्षस को पकड़कर ऐसे झँझोर डालो, जैसे भेड़िया भेड़ को। देखो, वह जीवित बचकर न भागने पाये। इसके प्राण को बाँध लो।

२९. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।
योनावृतस्य सीदत॥ —ऋग्० ९।१३।९

---

२७. (विश्वाः द्विषः) सब द्वेषियों को (अपभिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दे। (परिबाधः) चारों ओर से बाधा डालनेवाले (मृधः) हिंसकों को (जहि) मार दे। (तत् स्पार्हं वसु) उस [अलौकिक] स्पृहणीय ऐश्वर्य को (आभर) ला [हृञ् हरणे, ह् को भ्]।

२८. (अतिसराः) हे अग्रगामी वीरो, (अतिधावत) दौड़ पड़ो, (इन्द्रस्य) अपने नायक के (वचसा) वचन से, आदेश से (हत) दुश्मन पर टूट पड़ो [हन् हिंसागत्योः]। उस शत्रु को (मथ्नीत) मथ डालो (इव) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविम्) भेड़ को। (स वः) तुम्हारा वह शत्रु (जीवन्) जिन्दा (मा मोचि) न छूटने पावे, (अस्य) इसके (प्राणम्) प्राण को (अपि नह्यत) बाँध लो, वश में कर लो [णह बन्धने, दिवादि]।

२९. (अराव्णः) आततायियों को (अपघ्नन्तः) मारते हुए, (पवमानाः) पवित्रता लाते हुए, (स्वर्दृशः) ज्योति का दर्शन करते हुए, (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) मन्दिर में (सीदत) बैठो।

आततायियों का विध्वंस करते हुए, पवित्रता का प्रचार करते हुए, ज्योति का दर्शन करते हुए तुम सत्य के मन्दिर में आसीन होवो।

३०. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ —ऋग्० ९।६३।५

क्रियाशील बनो, प्रभु-महिमा का प्रचार करो, विश्व को आर्य बनाओ, राक्षसों का संहार करो।

३१. मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन।
गिरीँरचुच्यवीतन॥ —ऋग्० १।३७।१२

हे वीरो, जो तुम्हारे अन्दर बल है, उससे तुम राक्षस-जनों को डिगा दो, पहाड़ों को हिला दो।

३२. असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम्॥
—ऋ० १।३९।१०

हे शुभ बलिदान करनेवाले वीरो, तुम पूर्ण ओज को धारण करते हो। हे दुष्ट-प्रकम्पक वीरो, तुम्हारा बल अधूरा नहीं है। हे वीरो, जो क्रोध में भरकर ऋषियों से द्वेष करता है, उसके प्रति अपने द्वेष का बाण फेंको।

३३. गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥ —ऋ० १।८६।१०

---

३०. (इन्द्रं वर्धन्तः) प्रभु को बढ़ानेवाले, (अप्तुरः) क्रियाशील, (विश्वम् आर्यं कृण्वन्तः) विश्व को आर्य बनानेवाले, और (अराव्णः अपघ्नन्तः) आततायियों का संहार करनेवाले [बनो]।

३१. (मरुतः) हे वीरो, (यत् ह) जो (वः) तुम्हारा (बलम्) बल है, उससे (जनान्) राक्षस-जनों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो, डिगा दो, (गिरीन्) पहाड़ों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो, हिला दो।

३२. (सुदानवः) हे शुभ बलिदान करनेवालो, तुम (असामि) पूर्ण (ओजः) ओज (विभृथ) धारण करते हो। (धूतयः) हे दुष्ट-प्रकम्पक वीरो, (शवः) तुम्हारा बल (अ-सामि) अधूरा नहीं है। (मरुतः) हे बहादुरो, (तुम (परिमन्यवे) क्रोध से भरे हुए (ऋपिद्विषे) ऋषिद्वेषी के प्रति (इषुं न) बाण के समान (सृजत) फेंको (द्विषम्) द्वेष को।

३३. (गूहत) दूर कर दो (गुह्यम्) संसार-रूप गुफा में विद्यमान

हे वीरो, संसार-रूप गुफा में विद्यमान अविद्या एवं दुराचार के अन्धकार को दूर कर दो। समस्त भक्षक राक्षसों को नष्ट कर दो। ज्योति उत्पन्न करो, जिसे हम चाहते हैं।

३४. तृणस्कन्दस्य नु विशः परिं वृङ्क्त सुदानवः।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे॥ —ऋ० १।१७२।३

हे वीरो, तिनके के समान चञ्चल राक्षस की प्रजाओं को तुम अपनी रक्षा से वञ्चित कर दो। हमें उन्नत करो, जिससे हम प्रशस्त जीवन जिएँ।

३५. न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥ —ऋ० ५।५४।७

हे वीरो, तुम जिस ऋषि वा राजा की रक्षा में तत्पर हो जाते हो, वह न कभी हारता है, न मारा जाता है, न क्षीण होता है, न पीड़ित होता है, न हिंसित होता है, न उसकी सम्पदाएँ न्यून होती हैं, न उसकी रक्षाएँ विफल होती हैं।

३६. न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥
—ऋ० ५।५५।७

(तमः) [अविद्या एवं दुराचार आदि के] अन्धकार को। (ज्योतिः कर्त) ज्योति उत्पन्न करो, (यत्) जिसे (उश्मसि) हम चाहते हैं।

३४. (सुदानवः) हे शुभ बलिदान करनेवालो, (तृण-स्कन्दस्य) तिनके के समान चञ्चल [स्कन्दिर् गतिशोषणयोः, भ्वादि] राक्षस की (विशः) प्रजाओं को (नु) निश्चय ही (परिवृङ्क्त) अपनी रक्षा से वञ्चित कर दो [परि-वृजी वर्जने, अदादि]। (वः) हमें (ऊर्ध्वान्) उन्नत (कर्त) करो, (जीवसे) प्रशस्त जीवन के लिए।

३५. (मरुतः) हे वीरो, (न) न (सः) वह (जीयते) हारता है, (न) न (हन्यते) मारा जाता है, (न) न (स्रेधति) क्षीण होता है, (न) न (व्यथते) पीड़ित होता है, (न) न (रिष्यति) हिंसित होता है, (न) न (अस्य) इसकी (रायः) सम्पदाएँ (उपदस्यन्ति) समाप्त होती हैं, (न) न (ऊतयः) रक्षाएँ, (यं) जिस (ऋषिं वा) ऋषि को (राजानं वा) या राजा को (सुषूदथ) तुम अपनी रक्षा में ले-लेते हो।

३६. (मरुतः) हे वीरो, (न पर्वताः) न पहाड़ (न नद्यः) न नदियाँ

हे वीरो, न पहाड़, न नदियाँ तुम्हें रोक सकती हैं, जहाँ जाने की ठान लेते हो, वहाँ जाकर रहते हो। धरती-आसमान तक की परिक्रमा लगा लेते हो। जब तुम शुभ प्रयाण करते हो, तब रथ तुम्हारे इशारे पर चलते हैं।

३७. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः॥
—ऋ० ५।५७।८

हे बहादुर नेताजनो, हमें सुखी करो। तुम प्रभूत सम्पदा के स्वामी हो, अमर हो, परोपकार-यज्ञ के ज्ञाता हो, सत्य में प्रसिद्ध हो, मेधावी हो, युवक हो, विशाल वाणीवाले हो, धरा को आनन्द-वृष्टि से सींचनेवाले हो।

३८. परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः।
अग्नितपो यथासथ॥ —ऋ० ५।६१।४

हे भद्र जन्मवाले मर्त्य वीरो, तुम अन्धकार मिटाने के लिए दूर-से-दूर पहुँच जाओ। तुम अग्नि में तपे हुओं के समान तेजस्वी हो।

३९. यो नो मरुतो अभि दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम्॥
—ऋ० ७।५९।८

(वरन्त) रोक सकती हैं (वः) तुम्हें। (यत्र) जहाँ जाने का (अचिध्वम्) सङ्कल्प करते हो (तत्) वहाँ (गच्छथ इत् उ) चले ही जाते हो। (उत) और (द्यावापृथिवी) धरती-आसमान की (परि याथन) परिक्रमा कर लेते हो। (शुभं याताम्) शुभ प्रयाण करनेवाले तुम्हारे (रथाः) रथ (अनु अवृत्सत) अनुकूल होकर चलते हैं।

३७. (हये) हे (नरः मरुतः) नेता वीरो, (नः) हमें (मृडत) सुखी करो। तुम (तुवीमघासः) प्रचुर सम्पदावाले, (अमृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) परोपकार-यज्ञ के ज्ञाता, (सत्यश्रुतः) सत्य में प्रसिद्ध, (कवयः) मेधावी, (युवानः) युवक, (बृहद्-गिरयः) विशाल वाणीवाले, और (बृहत् उक्षमाणाः) बहुत अधिक सुख-सिंचक हो।

३८. हे (भद्रजानयः) भद्र जन्मवाले, (वीरासः मर्याः) वीर जनो, तुम [अन्धकार मिटाने के लिए] (परा एतन) दूर-दूर पहुँच जाओ। तुम (अग्नितपः यथा) अग्नि में तपे हुओं के समान (असथ) हो।

३९. (वसवः मरुतः) हे प्रशस्त वीरो, (यः) जो (दुर्हणायुः) बुरे

हे प्रशस्त वीरो, जो तिरस्कृत, क्रोधी, द्रोही शत्रु हमारे चित्तों को मारना चाहता है, उसे पाशों से बाँध लो, तपे शस्त्र से उसका वध कर दो।

४०. वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन। वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे॥ —ऋ० ७।१०४।१८

हे वीरो, प्रजाओं के बीच में विविध स्थानों पर स्थित हो जाओ। इच्छाशक्ति जागृत करो। पकड़ लो राक्षसों को, पीस डालो; जो राक्षस पक्षी होकर रात में उड़ते हैं और जो हिंसारहित यज्ञ के प्रदीप्त होने पर उसमें विघ्न डालते हैं।

४१. मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्। भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत॥

—अथर्व० १९।२७।६

हे वीरो, न तुम्हारे प्राण को, न तुम्हारे अपान को, न तेज को मायावी लोग नष्ट कर सकें। सब सम्पदाओं के धनी हे तेजस्वी देवजनो, तुम दिव्यता के साथ दौड़ो।

क्रोधवाला, (तिरः) तिरस्कृत शत्रु (नः चित्तानि) हमारे चित्तों को (अभि जिघांसति) मारना चाहता है, (सः) वह (द्रुहः) द्रोही (पाशान्) पाशों को (प्रति मुचीष्ट) धारण करे, (तम्) उसे (तपिष्ठेन) अत्यधिक तपे हुए (हन्मना) शस्त्र से (हन्तन) मारो।

४०. (वि तिष्ठध्वम्) विविध स्थानों पर स्थित हो जाओ, (मरुतः) हे वीरो, (विक्षु) प्रजाओं के बीच में। (इच्छत) इच्छाशक्ति जागृत करो। (गृभायत) पकड़ लो (रक्षसः) राक्षसों को, (पिनष्टन) पीस डालो; (ये) जो राक्षस (वयः भूत्वी) पक्षी होकर (पतयन्ति) उड़ते हैं (नक्तभिः) रात्रियों में, (ये वः) और जो (रिपः दधिरे) बाधा डालते हैं (देवे) प्रदीप्त होने पर (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ के।

४१. (मा) न (वः प्राणम्) तुम्हारे प्राण को, (मा) न (वः अपानम्) तुम्हारे अपान को, (मा) न (हरः) तेज को (मायिनः) मायावी लोग (दभन्) हिंसित कर सकें। (भ्राजन्तः) भ्राजमान, (विश्ववेदसः) सब सम्पदाओं के धनी (देवाः) हे देवजनो, तुम (दैव्येन) दिव्यता के साथ (धावत) दौड़ो।

४२. सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः॥

—ऋग्० ७।३३।८

आदित्य-मण्डल के समान तुम्हारी ज्योति है, समुद्र के समान गम्भीर तुम्हारी महिमा है, वायु के समान तुम्हारा वेग है। हे वीरो, तुम्हारे इन गुणों का कौन पार पा सकता है?

देखो, सूर्य की ओर देखो—

४३. रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव॥

—अथर्व० १३।२।२५

"तप से तपस्वी बना हुआ सूर्य द्युलोक में चढ़ गया है। वह आकाश में लौट-लौट कर आता है, वह प्रतिदिन रात्रि के अनन्तर पुनः पैदा होता है। वह देवों का अधिपति बना हुआ है।"

तुम भी तपस्या करो, ऊँचे चढ़ जाओगे। विद्वज्जन तुम्हें अपना अधिपति बनाएँगे।

देखो, ज्योति का पुञ्ज सूर्य उदित हो रहा है—

४४. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वाऽतारीद् दुरितानि शुक्रः॥

—अथर्व० १३।२।३४

---

४२. (सूर्यस्य वक्षथः इव) सूर्य-मण्डल के समान (एषां [वः] ज्योतिः) इन तुम वीरों की ज्योति है, (समुद्रस्य इव) समुद्र के समान (महिमा गभीरः) महिमा गम्भीर है, (वातस्य इव) वायु के समान (प्रजवः) प्रकृष्ट वेग है। (वसिष्ठाः) हे अतिशय निवासक वीरो, (वः स्तोमः) तुम्हारी यह स्तुति (अन्येन अन्वेतवे न) किसी दूसरे से अनुसरण की जा सकने योग्य नहीं है।

४३. (रोहितः) सूर्य (दिवम् आसहत्) द्युलोक में चढ़ गया है (तपसा तपस्वी) तप से तपस्वी बना हुआ। (सः) वह (योनिम्) आकाश में (आ एति) आता है, (सः उ) और वह (पुनः जायते) पुनः उत्पन्न होता है। (सः) वह (देवानाम्) देवजनों का (अधिपतिः) अधिपति (बभूव) बना हुआ है।

४४. (देवानाम्) रश्मियों का (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) पुञ्ज,

रश्मियों का अद्भुत पुञ्ज, ज्योतिष्मान्, प्रकाशक सूर्य प्रदिशाओं में उमड़ रहा है। इस चमकीले दिवाकर ने अपने तेजों से अन्धकारों को और समस्त दुरितों को ध्वस्त कर दिया है।

तुम भी सूर्यसम चमको और समाज, राष्ट्र एवं जगत् में से तामसिकताओं तथा दुरितों को दूर करो।

४५. युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्त्री। युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम्॥ —ऋग्० ७।५८।४

जिसकी रक्षा में तुम तत्पर होते हो वह ब्राह्मण सैकड़ों का अधिराज हो जाता है। जिसकी रक्षा में तुम तत्पर होते हो वह योद्धा सहस्रों का अधिपति हो जाता है। जिसके तुम रक्षक होते हो वह सम्राट् शत्रु को मार गिराता है। हे शत्रु-प्रकम्पक वीरो, तुम्हारा यह लाभकारी रक्षकरूप हमारे लिये भी प्रकट हो।

४६. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः। सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥ —अथर्व० २९।११; ८।३।१८

सदा ही, हे वीर, तू राक्षसों का संहार करता आया है। राक्षस तुझे युद्धों में जीत नहीं सके। अपनी इस परम्परा को स्थिर रख। उन मार-काट मचानेवाले मांसभक्षी राक्षसों को भस्म कर दे। देख

(केतुः) प्रकाशक, प्रज्ञापक, (ज्योतिष्मान्) ज्योतिर्मय (सूर्यः) सूर्य (प्रदिशः) प्रदिशाओं में (उद्यन्) उमड़ रहा है। (शुक्रः दिवाकरः) इस चमकीले दिवाकर ने (द्युम्नैः) तेजों से (तमांसि) अन्धकारों को तथा (विश्वा दुरितानि) समस्त दुरितों को (अति अतारीत्) विध्वस्त कर दिया है।

४५. (मरुतः) हे वीरो, (युष्मोतः) तुमसे रक्षित (विप्रः) ब्राह्मण (शतस्वी) सैकड़ों का स्वामी हो जाता है, (युष्मोतः) तुमसे रक्षित (अर्वा) आक्रमणकारी (सहुरिः) सहनशील योद्धा (सहस्त्री) सहस्रों का स्वामी हो जाता है, (उत) और (युष्मोतः) तुमसे रक्षित (सम्राट्) राजा (वृत्रम्) शत्रु को (हन्ति) मार गिराता है। (धूतयः) हे शत्रु-प्रकम्पक वीरो, (वः) तुम्हारा (तद्) वह (देष्णम्) लाभदायी रूप (अस्तु) हमारे लिए भी प्रकट हो।

४६. (अग्ने) हे अग्रणी वीर, तू (सनात्) सदा से (यातुधाना[न्]

वे तेरी चमचमाती तलवार से बचने न पाएँ।

४७. यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥

—ऋग्० १०।८७।६

हे वीर, यातनादायी राक्षस को खड़े, चलते-फिरते, आकाश में उड़ते, जहाँ कहीं भी तू देख पाये तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दे।

४८. यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥

—ऋग्० ७।१०४।१०

देख, जो हमारे अन्न-रस को दूषित करना चाहता है; हमारे घोड़ों का, गौओं का, हमारे शरीरों का खून चूसना चाहता है, वह शत्रु, चोर, डाकू, लुटेरा नष्ट हो जाए; अपने शरीर और अपनी समस्त समृद्धि के साथ धूल में मिल जाए।

राक्षसों को (मृणसि) कुचलता आया है। (त्वा) तुझे (रक्षांसि) राक्षस (पृतनासु) युद्धों में (न जिग्युः) कभी नहीं जीत सके। तू (सहमूरान्) मारक स्वभाववाले (क्रव्यादः) मांसभक्षी राक्षसों को (अनुदह) भस्म कर दे। वे (ते) तेरी (दैव्यायाः हेत्याः) चमचमाती तलवार से (मा मुक्षत) न छूटने पावें।

४७. (जातवेदः अग्ने) हे ज्ञानी वीर, (यातुधानम्) यातनादायी राक्षस को (यत्र) जहाँ भी (इदानीम्) अब (पश्यसि) तू देखे, (तिष्ठन्तम्) खड़े हुए, (उत वा) अथवा (चरन्तम्) चलते-फिरते हुए, (यद्वा) अथवा (अन्तरिक्षे) आकाश में (पतन्तम्) उड़ते हुए, तो (तम्) उसको (अस्ता) बाण चलानेवाला (शिशानः) तेजस्वी तू (शर्वा) हिंसक बाण से (विध्य) घायल कर दे।

४८. (अग्ने) हे अग्नितुल्य वीर, (यः) जो (नः पित्वः) हमारे अन्न के (रसम्) रस को (दिप्सति) दूषित करना चाहता है, (यः अश्वानाम्) जो घोड़ों का, (यः गवाम्) जो गौओं का, (यः तनूनाम्) जो हमारे शरीरों का [रसं दिप्सति] खून चूसना चाहता है (सः) वह (रिपुः) शत्रु, (स्तेनः) चोर, (स्तेयकृत्) लुटेरा (दभ्रम् एतु) विनाश को प्राप्त हो; (तन्वा) शरीर से (तना च) और समृद्धि से (निहीयताम्) हीन हो जाए।

४९. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम्॥
—ऋग्० १०।८७।२५

राक्षस ने अपने जिस प्रभाव से चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा रखी है, उसके उस ताप को अपने अदम्य प्रभाव से तू दबा दे। हे वीर, उस पर-पीड़क राक्षस के बल और पराक्रम को तू चूर-चूर कर दे।

५०. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय॥
—ऋग्० १०।२२।८

हे शत्रुहन्ता वीर, जो अकर्मण्य, दस्यु, नास्तिक, पापव्रती नर-पिशाच हमें सताने आये, उसके हथियार को तू तोड़ डाल।

मत सोच कि तू अकेला है। देख—

५१. एक एवाऽग्निर्बहुधा समिद्धः एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः। एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम्॥ —ऋग्० ८।५८।२

'अकेली आग कितनी चमक से चमकती है! अकेला सूर्य विश्व को प्रकाशित करता है। अकेली उषा सब दृश्यमान वस्तुओं को चमका रही है। अकेला परमेश्वर सर्वत्र व्यापा हुआ है।' तू भी

---

४९. (अग्ने) हे अग्रणी वीर, (विश्वतः) चारों ओर (हरसा) अपने तेज और प्रभाव से (हरः) राक्षस के तैज और प्रभाव को (प्रतिशृणीहि) नष्ट कर दे। (यातुधानस्य रक्षसः) यातनादायक राक्षस के (बलम्) बल को और (वीर्यम्) पराक्रम को (वि-रुज) चूर-चूर कर दे।

५०. जो (अकर्मा) अकर्मण्य, (दस्युः) दस्यु (अमन्तुः) नास्तिक, (अन्यव्रतः) पापव्रती (अमानुषः) नर-पिशाच (नः अभि) हमें अभिभूत करे, सताये (अमित्रहन्) हे शत्रुहन्ता, (त्वम्) तू (तस्य दासस्य) उस दस्यु के, घातक के (वधः) हथियार को (दम्भय) तोड़ डाल।

५१. (एकः एव) एक ही (अग्निः) अग्नि (बहुधा) बहुत प्रकार से (समिद्धः) चमकता है। (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु) सारे विश्व के लिए (प्रभूतः) समर्थ है। (एका एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वम्) इस सबको (विभाति) चमकाती है। (एकं वै) एक ही [परमेश्वर] (इदं सर्वम्) इस सबमें (विबभूव) व्यापक है।

अकेला क्या नहीं कर सकता?

५२. नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध। इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि॥ —ऋग्० ६।२५।५

बड़े-से-बड़ा शूरवीर, बड़े से बड़ा फुर्तीला, बड़े से बड़ा विजेता, बड़े से बड़ा अभिमानी योद्धा युद्ध में तेरी बराबरी नहीं कर सकता। किसी में भी तुझे परास्त करने की शक्ति नहीं है। तू सबको परास्त कर सकता है।

५३. न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः। न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु॥ —ऋग्० २।१६।३

तेरा बल भूमि-आकाश से हार नहीं मानेगा, तेरा रथ समुद्र और पहाड़ों से हार नहीं मानेगा। कोई भी तेरे वज्र की टक्कर नहीं ले सकेगा, जब तेज वाहन पर आरूढ़ होकर दिग्विजय करता हुआ तू कोसों दूर उड़ा चला जाएगा।

५४. सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून्। उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम्॥ —ऋग्० १०।८४।३

---

५२. (नहि) न ही (त्वा) तुझ से (शूरः) कोई शूरवीर, (न तुरः) न कोई फुर्तीला आक्रान्ता, (न धृष्णुः) न कोई विजेता, (न त्वा) न तुझसे (मन्यमानः योधः) कोई अभिमानी योद्धा (युयोध) युद्ध कर सकता है। (इन्द्र) हे वीर! (एषाम्) इनमें से (नकिः) कोई भी नहीं (त्वा प्रत्यस्ता) तुझे हरा सकता है। तू (मह्ना) अपनी महिमा से (विश्वा जातानि) सब उत्पन्न [शत्रुओं] को (अभ्यसि) परास्त कर सकता है।

५३. (ते इन्द्रियं) तेरा बल (क्षोणीभ्याम्) भूमि और आकाश से (परिभ्वे न) पराजित नहीं होगा। (इन्द्र) हे वीर, (ते रथः) तेरा रथ (समुद्रैः पर्वतैः) समुद्र और पहाड़ों से [परिभ्वे न] पराजित नहीं होगा। (ते वज्रम्) तेरे वज्र का (कश्चन) कोई भी (न अन्वश्नोति) मुकाबला नहीं कर सकेगा, (यत्) जब तू (आशुभिः) शीघ्रगामी वाहनों द्वारा (पुरु योजना) अनेकों योजन दूर तक (पतसि) उड़ा चला जाएगा।

५४. (मन्यो) हे मन्युमूर्त्ति वीर, (अस्मे) हमारे हितार्थ (अभिमातिम्) अभिमानी शत्रु को (सहस्व) पछाड़ दे। तू (शत्रून्) शत्रुओं को (रुजन्)

हे मन्युमूर्ति वीर, गर्वीले शत्रु को परास्त कर दे; शत्रु दल को तोड़ता-फोड़ता, मारता-कुचलता हुआ आगे बढ़। तेरे उग्र बल को कोई नहीं रोक सकता; तू अकेला ही सब शत्रुओं को वश करने में समर्थ है।

५५. पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ —ऋग्० ८।६४।२

पाद-प्रहार से विनाशकारी लुटेरों को नीचे गिरा दे। हे वीर, तू महान् है, कोई तेरी बराबरी नहीं कर सकता।

५६. पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ —ऋग्० १।१३३।५

पिशाच कैसा ही तुझे अपना लाल-पीला चेहरा दिखाकर भय दिखाये, कैसा ही वह ज़ोर का दहाड़े, मत पर्वाह कर। उसे कुचल डाल। सब राक्षसों का मूलोच्छेद कर दे।

५७. सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्। एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामाखिदा भोजनानि ॥ —अथर्व० ४।२२।७

शेर होकर शत्रु-प्रजाओं को हड़प जा, बाघ बनकर शत्रुओं को गिरा दे। तू अद्वितीय वीर है, वीरों का मित्र है, सर्वविजयी है। जो

तोड़ता-फोड़ता, (मृणन्) मारता, (प्रमृणन्) कुचलता (प्रेहि) आगे बढ़। (ते) तेरे (उग्रम्) उग्र (पाजः) बल को (न नु) कोई नहीं (आ रुरुध्रे) रोक सकता है। (एकज) हे अकेले वीर, (वशी) वश करनेवाला (त्वम्) अकेला तू (वशं नयसे) [सब शत्रुओं को] वश कर लेता है।

५५. (पदा) पैर से (अराधसः पणीन्) विनाशकारी लुटेरों को (नि बाधस्व) नीचे गिरा दे। (महान् असि) तू महान् है। (कश्चन) कोई भी (त्वा प्रति नहि) तेरे मुकाबले का नहीं है।

५६. (पिशङ्गभृष्टिम्) क्रोध से लाल हुए, (अम्भृणम्) बहुत जोर से दहाड़नेवाले (पिशाचिम्) पिशाच को (इन्द्र) हे वीर! (संमृण) पूर्णतः कुचल डाल। (सर्वं रक्षः) सब राक्षसों को (निबर्हय) निःशेष रूप से विनष्ट कर दे।

५७. (सिंहप्रतीकः) सिंह-सदृश होकर (सर्वाः विशः) सब शत्रु प्रजाओं को (अद्धि) हड़प जा। (व्याघ्रप्रतीकः) बाघ-सदृश होकर (शत्रून् अवबाधस्व) शत्रुओं को नीचे गिरा दे। (एकवृषः) तू अद्वितीय

तुझसे शत्रुता करे उनका भोजन छीन ले।

५८. अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम्॥
—ऋग्० १।८०।१४

हे बिजली की तरह गर्जनेवाले, तेरे गर्जन को सुनकर स्थावर-जंगम काँप उठते हैं। तेरे मन्यु को देखकर सूर्य तक भय से थर्रा उठता है। तू सच्चा वीर है, स्वराज्य का आराधक बन।

५९. यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे॥
—ऋग्० २।२६।२

यज्ञ कर हे वीर, मनोवेग से आ टूटनेवाले विघ्नों पर विजय पा। पापियों की हिंसा करते हुए मनमें भद्र भावना ला। बलिदान कर, जिससे तेरा यश चमके। आ, हम सब महान् प्रभु की रक्षा को अपनाएँ।

६०. अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम्।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥ —ऋग्० १०।१३४।२

वीर है, (इन्द्रसखा) वीरों का मित्र है, (जिगीवान्) विजयी है। (शत्रूयताम्) शत्रुता करनेवालों के (भोजनानि) भोजनों को या रक्षा-साधनों को (आखिद) छीन ले।

५८. (अद्रिवः) हे बिजली की तरह गर्जनेवाले, (ते अभिष्टने) तेरा सिंहनाद होने पर (यत् स्थाः जगत् च) जो स्थावर और जङ्गम है वह (रेजते) काँप उठता है। (त्वष्टा चित्) सूर्य भी (तव मन्यवे) तेरे मन्यु के आगे (इन्द्र) हे वीर, (भिया) भय से (वेविज्यते) थर्रा उठता है। (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) तू स्वराज्य का आराधक बन।

५९. (यजस्व) यज्ञ कर (वीर) हे वीर, (प्रविहि) जीत ले (मनायतः) मनोवेग से आक्रमण करनेवालों को। (मनः भद्रं कृणुष्व) मन को भद्र बना (वृत्रतूर्ये) दुष्टों की हिंसा में। (हविः कृणुष्व) हवि दे, उत्सर्ग कर, बलिदान कर, (यथा) जिससे तू (सुभगः असति) यशस्वी हो। आ, (ब्रह्मणस्पतेः) महान् प्रभु की (अवः) रक्षा को (आ वृणीमहे) अपनाएँ।

६०. हे वीर, (दुर्हणायतः) दुःखद रूप से मार-काट करनेवाले

दुःखद रूप से मार-काट करनेवाले राक्षस से बल को तू नीचा दिखा दे। पैरों से रौंद दे उसे, जो हम पर अपना शासन जमाना चाहता है। याद रख, तुझे देवीतुल्य माता ने जन्म दिया है, तुझे भद्र माता ने जन्म दिया है।

६१. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥

—यजुः० १६।३

हे गिरिशन्त, हे पहाड़ पर खड़ा होकर अर्थात् उच्च पद पर स्थित होकर शान्ति फैलानेवाले वीर, जिस अस्त्र को तूने छोड़ने के लिए हाथ में पकड़ा हुआ है, उसे शिव बना। हे गिरित्र, हे उच्च पद पर आसीन होकर रक्षा का व्रत लेनेवाले वीर, तू पुरुषों की हिंसा मत कर, जगत् की हिंसा मत कर।

६२. अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह॥

—अथर्व० ७।१०५।१

हे नर, पौरुषेय कटु वचन को छोड़कर दिव्य मधुर वचन का वरण करता हुआ तू सब सखाओं के साथ प्रेम का व्यवहार कर।

(मर्तस्य) मनुष्य के (स्थिरम्) बल को (अव तनुहि स्म) नीचा कर दे। (अधस्पदम्) पैरों तले (तम्) उसे (कृधि) कर दे, (यः) जो (अस्मान्) हम पर (आदिदेशति) शासन जमाता है। तुझे (देवी जनित्री) देवी तुल्य माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है, (भद्रा जनित्री) भद्र माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है।

६१. (गिरिशन्त) हे पहाड़ पर खड़े होकर शान्ति का विस्तार करनेवाले वीर, तूने (याम् इषुम्) जिस बाण को, जिस हथियार को (अस्तवे) छोड़ने के लिए (हस्ते) हाथ में (बिभर्षि) पकड़ा हुआ है, (ताम्) उसे (गिरित्र) हे पहाड़ पर खड़े होकर रक्षा करनेवाले वीर, (शिवां कुरु) शिव बना। (मा हिंसीः) मत मार (पुरुषम्) पुरुषों को और (जगत्) जगत् को।

६२. (पौरुषेयात्) पौरुषेय कटु वचन से (अपक्रामन्) दूर हटता हुआ, (दैव्यं वचः) दिव्य मधुर वचन को (वृणानः) वरण करता हुआ तू (विश्वेभिः) सब (सखिभिः) सखाओं के (सह) साथ (प्रणीतीः अभ्यावर्तस्व) प्रेम का व्यवहार कर।

६३. अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्।
आ रोहत सवितर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम॥
—अथर्व० १२।२।४८

हे भाइयो, प्राणरूपी नौका को पकड़ लो, वह तुम्हें सब दुरितों और निन्दनीय कर्मों से बचा लेगी। आत्मा की इस प्राणरूपिणी नाव पर सवार हो जाओ। आओ, हम-तुम सब शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धारूप षट्क सम्पत्तियों द्वारा अमति को पार कर लें।

---

६३. (अनड्वाहम्) प्राणरूप [अनड्वान् प्राण उच्यते, अथर्व० ११।४।१३] (प्लवम्) नौका को (अन्वारभध्वम्) पकड़ ले। (सः) वह प्राण (वः) तुम्हारा (निर्वक्षत्) उद्धार करेगी (दुरितात्) दुर्गति, एवं (अवद्यात्) निन्दनीय कर्म से। (आ रोहत) चढ़ जाओ, (सवितुः) आत्मारूप सविता की (एतां नावम्) इस नाव पर। आओ, (षड्भिः उर्वीभिः) विशाल षट्क सम्पत्तियों द्वारा (अमतिं) अमति को (तरेम) तर जाएँ।

वीरता की तरङ्ग में

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ
हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ॥

—यजुः० २०।७

मेरी भुजाओं में इन्द्र का बल है, मेरे हाथों में कर्म और सामर्थ्य है।

१. प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥ —यजु:० १।७

राक्षसों को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। शत्रुओं को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। कोई राक्षस और कोई शत्रु बाकी नहीं छूटा है। आहा, अब देखो मैं स्वच्छन्द आकाश में विहार कर रहा हूँ।

२. पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहम् अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥

—यजु:० १७।६७

एक दिन था जबकि मैं नीचे भूमि पर खड़ा हुआ था। तब निःसन्देह राक्षसों के आघात-प्रतिघात से मैं विचलित हो सकता था। किन्तु आज मेरी वह अवस्था नहीं है, मैं ऊँचा उठ गया हूँ। ''भूमि से उठकर अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से भी उठकर द्युलोक में पहुँच चुका हूँ। इन उन्नति की सीढ़ियों को क्रमशः पार करके मैं उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ गया हूँ। मैंने स्वर्गीय ज्योति के दर्शन कर लिये हैं।'' आज किस में शक्ति है जो मेरे सामने आँख उठाकर भी देख सके।

३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम॥

—यजु:० १८।६६

---

१. (प्रत्युष्टम्) दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस, (प्रत्युष्टाः) दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु। (निष्टप्तम्) पूर्णतया दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस। (निष्टप्ताः) पूर्णतया दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु। (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम् अनु) अन्तरिक्ष में (एमि) विहार कर रहा हूँ।

२. (पृथिव्याः) पृथिवी से (अहम्) मैं (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आरुहम्) चढ़ गया हूँ। (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (दिवम्) द्युलोक में (आरुहम्) चढ़ गया हूँ। (नाकस्य पृष्ठात्) स्वर्ग के पृष्ठ (दिवः) द्युलोक से (स्वर्ज्योतिः) आनन्द की ज्योति को (अगाम्) प्राप्त कर लिया है (अहम्) मैंने।

३. (अग्निः अस्मि) मैं आग हूँ, (जन्मना जातवेदाः) जन्म से अर्थात् स्वभाव से जागरूक हूँ। (घृतं मे चक्षुः) तेजस्विनी है मेरी आँख, (अमृतं

मैं आग हूँ, दहकता हुआ अङ्गारा हूँ, स्वभाव से ही जागरूक हूँ। मेरी आँख में तेज है, मेरे मुख में अमृत है। मैं सूर्य हूँ, तीन तेजों से युक्त हूँ, सारे भूमण्डल को अपने कदमों से माप लेनेवाला हूँ, अक्षय हूँ, जलता हुआ यज्ञकुण्ड हूँ, आहुति हूँ।

४. शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतꣳसम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्॥

—यजुः० २०।५

मेरे सिर में बड़े-बड़े ज्ञान-विज्ञान का ऐश्वर्य भरा है, चेहरे पर यशस्विता छाई है, केश और श्मश्रुओं से दीप्ति फूटी पड़ रही है। मेरा प्राण-राजा अमर है, मेरी आँख सम्राट् के तुल्य है, मेरा श्रोत्र विराट् शक्ति से सम्पन्न है।

५. जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः॥

—यजुः० २०।६

मेरी जिह्वा भद्रवादिनी है, वाक्शक्ति महान् है, मनमें मन्यु भरा है, दीप्ति देखने ही लायक है। मेरे शरीर की एक-एक अंगुलि, शरीर का एक-एक अङ्ग मोद-प्रमोद से नाच रहा है, साहस मेरा मित्र है।

मे आसन्) अमृत है मेरे मुख में। (अर्कः) सूर्य हूँ, (त्रिधातुः) [शरीर, मन, आत्मा के] तीन तेजों से युक्त हूँ। (रजसः विमानः) सारे लोक को, भूमण्डल को, माप लेनेवाला हूँ। (अजस्रः) अक्षय हूँ, (घर्मः) प्रज्वलित यज्ञकुण्ड हूँ, (हविः अस्मि नाम) आहुति हूँ, शुभ कार्य में अपनी बलि देनेवाला हूँ।

४. (मे शिरः) मेरा सिर (श्रीः) साक्षात् ऐश्वर्य है, (मुखम्) चेहरा (यशः) साक्षात् यश है, (श्मश्रूणि) मूँछें (केशाः च) और केश (त्विषिः) दीप्ति के अवतार हैं। (मे प्राणः राजा) मेरा प्राण-राजा (अमृतम्) अमर है, (चक्षुः) आँख (सम्राट्) सम्राट्-तुल्य है, (श्रोत्रम्) कान (विराट्) बड़ी शक्तिवाला है।

५. (मे जिह्वा) मेरी जिह्वा (भद्रम्) भद्र है, (वाक्) वाक्शक्ति (महः) महान् है, (मनः) मन (मन्युः) मन्युयुक्त है, (भामः) दीप्ति (स्वराट्) स्वतः दमकती हुई है। (अंगुलीः) अंगुलियाँ और (अङ्गानि) अन्य सब अङ्ग (मोदाः प्रमोदाः) मोद-प्रमोद-युक्त हैं। (सहः) साहस

६. **बाहू मे बलमिन्द्रियꣳहस्तौ मे कर्म वीर्यम्।**
आत्मा क्षत्रमुरो मम। —यजुः० २०।७

मेरी भुजाओं में इन्द्र का-सा बल है, हाथों में कर्म और सामर्थ्य है। मेरा आत्मा दुःखियों का कष्ट दूर करनेवाला है, मेरी छाती चोटें सहनेवाली है।

७. **मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।**
घर्मस्त्रिशुग् विराजति विराजा ज्योतिषा सह
ब्रह्मणा तेजसा सह॥ —यजुः० ३८।२७

मेरे अन्दर बड़ा भारी इन्द्र का बल है, मेरे अन्दर उत्साह है, मेरे अन्दर सङ्कल्प-बल है। शरीर-मन-आत्मा तीनों का तेज मेरे अन्दर दमक रहा है। मैं विराट् ज्योति से भासमान हूँ, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हूँ।

८. **अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ।**
अहं सूर्य इवाजनि॥ —अथर्व० २०।११५।१

मैंने पिता प्रभु से सत्यमयी मेधा को पा लिया है। मैं साक्षात् सूर्य हो गया हूँ।

(मे मित्रम्) मेरा मित्र है।

६. (मे बाहू) मेरी भुजाएँ (इन्द्रियं बलम्) साक्षात् इन्द्र का बल हैं। (मे हस्तौ) मेरे दोनों हाथ (कर्म वीर्यम्) साक्षात् कर्म और सामर्थ्य की मूर्त्ति हैं। (आत्मा) मेरा आत्मा (क्षत्रम्) क्षत्र है, दुःखियों को कष्टों से बचानेवाला है। (मम उरः) मेरी छाती भी (क्षत्रम्) क्षत्र है, स्वयं चोटें सहकर दूसरों को चोटों से बचानेवाली है।

७. (मयि) मुझमें (त्यद्) वह प्रसिद्ध (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) इन्द्र का बल है, (मयि) मुझमें (दक्षः) उत्साह है, (मयि) मुझमें (क्रतुः) सङ्कल्प या कर्म है। मुझमें (त्रिशुग् घर्मः) [शरीर, मन, आत्मा के] तीन तेजों से युक्त दीप्ति (विराजति) विराजमान है, (विराजा ज्योतिषा सह) विराट् ज्योति के साथ और (ब्रह्मणा तेजसा सह) ब्रह्म-तेज के साथ।

८. (अहम् इत् हि) मैंने तो (पितुः) पिता प्रभु से (ऋतस्य मेधाम्) सत्य की बुद्धि को (परि जग्रभ) ग्रहण कर लिया है। (अहम्) सत्य की बुद्धि को (परि जग्रभ) ग्रहण कर लिया है। (अहम्) मैं (सूर्यः इव)

९. यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः॥

—अथर्व० ६।३९।३

देखो, विद्युत् कैसी यशस्विनी है, अग्नि कैसा यशस्वी है, चन्द्रमा कैसा यशस्वी है। ऐसे ही मैं भी सब प्राणियों में यशस्वी हूँ, सबसे अधिक यशस्वी हूँ।

१०. अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्य-मेधतुम्। मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वी र्घृतमा वहन्तु॥

—अथर्व० ९।२।११

मेरे सङ्कल्प-बल ने सब शत्रुओं को, सब बाधाओं को चुन-चुनकर मार दिया है। मेरे आगे विशाल लोक खुल गया है, समृद्धि के द्वार खुल गये हैं। चारों दिशाएँ मेरे आगे झुक जाएँ, छहों दिशाएँ मुझे उपहार प्रदान करें।

११. नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै॥

—ऋग्० ४।१८।२

सूर्यवत् (अजनि) हो गया हूँ।

९. (इन्द्रः) विद्युत् (यशाः) यशस्वी है। (अग्निः) अग्नि (यशाः) यशस्वी है। (सोमः) चन्द्रमा भी (यशाः) यशस्वी (अजायत) बना हुआ है। (अहम्) मैं भी (विश्वस्य भूतस्य) सब प्राणियों में (यशाः) यशस्वी और (यशस्तमः) सबसे अधिक यशस्वी (अस्मि) हूँ।

१०. (अवधीत्) मार दिया है (कामः) सङ्कल्प-बल ने (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उन्हें। (उरुं लोकम्) विशाल लोक को (अकरत्) खोल दिया है (मह्यम्) मेरे लिए, और (एधतुम्) समृद्धि को भी। (मह्यं नमन्ताम्) मेरे आगे झुक जाएँ (प्रदिशः चतस्रः) दिशाएँ चारों। (मह्यम्) मेरे लिए (षड् उर्वीः) छहों विशाल दिशाएँ (घृतम् आवहन्तु) घृत प्रदान करें—उपहार लाएँ।

११. (अहम्) मैं (अतः) इधर से (न निरयाः) नहीं निकलूँगा, (एतत्) यह रास्ता (दुर्गहा) मेरे लिए मुश्किल से ही पकड़ने योग्य है। मैं तो (तिरश्चता) सीधे चीरते हुए (पार्श्वात्) पार्श्व से (निर्गमाणि) निकल जाऊँगा। (मे) मेरे लिए (बहूनि) बहुत-से (कर्त्वानि) ऐसे करने योग्य काम हैं (अकृता) जिन्हें आज तक किसी ने नहीं किया है। मैं

अरे, मैं इस टेढ़े-मेढ़े, घुमा-फिरा कर बड़ी देर में लक्ष्य तक पहुँचानेवाले कुटिल रास्ते को नहीं पकड़ूँगा। यह रास्ता तो उनके लिये है, जिनमें सीधे तीक्ष्णधार रास्ते पर चलने का साहस नहीं है। मैं तो सीधा रास्ता काटकर निकल जाऊँगा। मुझे इधर-उधर भूल-भुलैयों में समय नष्ट करने का अवकाश कहाँ है? मेरे आगे अनेकों महान् कार्य पड़े हैं। समय थोड़ा है, कार्य अधिक है। तिस पर यह कि पग-पग पर सङ्घर्ष है। इस बाधा से लड़ना है, उस बाधा से भिड़ना है और रास्ता चीरकर आगे बढ़ना है। किसी से लड़ना है, किसी से पूछ-ताछ करने के लिये बीच में रुकना है।

१२. अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः॥

—ऋग्० १०।१६६।२

मैं शत्रु-हन्ता हूँ, इन्द्र की तरह अविनाशी और अक्षत हूँ। इन सब शत्रुओं को पल-भर में पैरों तले रौंद दूँगा।

१३. अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे॥

—ऋग्० १०।१६६।४

ऐ मुझ से शत्रुता करनेवालो, सावधान! देखो, अपने सर्वकर्मक्षम तेज के साथ मैं आ पहुँचा हूँ। तुमने जो मेरे विनाश के बड़े-बड़े मनसूबे बाँध रखे हैं, जो बड़े-बड़े षड्यन्त्र रच रखे हैं, जो सङ्घ-

---

(त्वेन) किसी से (युध्यै) लड़ूँगा, (त्वेन) किसी से (संपृच्छै) पूछताछ करूँगा।

१२. (अहम्) मैं (सपत्नहा) शत्रु-हन्ता (अस्मि) हूँ, (इन्द्रः इव) इन्द्र की तरह (अरिष्टः) अविनाशी और (अक्षतः) अक्षत हूँ। (इमे सर्वे) ये सब (सपत्नाः) शत्रु (मे पदोः अधः) मेरे पैरों के नीचे (अभिष्ठिताः) कुचले जाएँगे।

१३. (अभिभूः) पराजयकारी (अहम्) मैं (विश्वकर्मेण धाम्ना) सर्वकर्मक्षम तेज के साथ (आगमम्) आ गया हूँ। (वः चित्तम्) तुम्हारे विचार को—इरादों को (आददे) वश में किये लेता हूँ, (वः व्रतम्) तुम्हारे कर्म को, तुम्हारी करतूतों को (आददे) वश में किये लेता हूँ, (वः समितिम्) तुम्हारी समिति को—दलबन्दी को (आददे) वश में किये लेता हूँ।

समितियाँ बना रखी हैं, उन सबको अभी मैं अपनी मुट्ठी में किये लेता हूँ।

१४. यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता॥

—ऋग्० ७।१०४।८

जो कोई परिपक्व, शुद्ध मन से विचरते हुए मुझे असत्य वचनों से दूषित करना चाहेगा, उस असत्यवक्ता दुष्ट का मुट्ठी में भींचे हुए पानी के समान नाम-निशान नहीं बचेगा।

१५. परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः। प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्॥

—ऋग्० ७।१०४।११

वह अपने शरीर के साथ और सारे ताम-झाम के साथ पराजित हो जाएगा; तीनों विशाल लोकों के अधःशायी हो जाएगा, उसका यश सूख जाएगा, जो हमें दिन में और जो हमें रात में मौत के घाट उतारना चाहता है।

मानवी शत्रुओं को ही नहीं, मैं मौत तक को दूर भगा सकता हूँ।

१६. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्॥

—ऋग्० १०।१८।१

---

१४. (यः) जो (पाकेन मनसा) परिपक्व, शुद्ध मन से (चरन्तम्) विचरते हुए (मा) मुझे (अनृतेभिः वचोभिः) असत्य वचनों से (अभिचष्टे) निन्दित करता है, वह (असतः वक्ता) असत्य का वक्ता मनुष्य (इन्द्र) हे मेरे आत्मन्, (काशिना) मुट्ठी से (संगृभीता) भींचे हुए (आपः इव) जलों के समान (असन् अस्तु) असत् हो जाएगा, उसका नाम-निशान नहीं बचेगा।

१५. (सः) वह (तन्वा) शरीर के साथ (तना च) और ताम-झाम के साथ (परः अस्तु) दूर हो जाए, (विश्वाः) सब (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) विशाल लोकों के (अधः अस्तु) नीचे हो जाए, (देवाः) हे विद्वानो, (अस्य) इसका (यशः) यश (प्रति शुष्यतु) सूख जाए, (यः) जो (नः) हमें (दिवा) दिन में (दिप्सति) मारना चाहता है, (यः च) और जो (नक्तम्) रात में (दिप्सति) मारना चाहता है।

१६. (मृत्यो) ओ मौत, तू उस (परं पन्थाम्) परले मार्ग का (अनु

ओ मौत, तू अपने उस दूसरे रास्ते से लम्बी बन, जो तेरा देवयान से भिन्न मार्ग है। तुझे आँखोंवाली और कानोंवाली मानकर मैं कह रहा हूँ कि तू हमारी प्रजा की हिंसा मत कर, हमारे वीरों को मत मार।

१७. मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्।
पदीष्ट तृष्णया सह॥ —ऋग्० १।३८।६

हमारी शक्ति तो देखो! मौत, जिसे मारना कठिन है, हमें नहीं मार सकती, नहीं मार सकती। अपने सब मनसूबों के साथ धराशायी हो जाती है।

१८. उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ —अथर्व० ७।५३।७

हम तमस् से ऊपर उठ गये हैं। उत्तम द्युलोक में आरोहण करते हुए हमने प्रकाशकों में सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक उत्तम ज्योति सूर्य को पा लिया है।

१९. विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥ —अथर्व० १०।५।२५

परेहि) अनुसरण कर, (यः ते) जो तेरा (देवयानात् इतरः) देवयान से भिन्न (स्वः) अपना मार्ग है। (चक्षुष्मते) आँखों वाली और (शृण्वते) सुननेवाली (ते) तुझे (ब्रवीमि) मैं कह रहा हूँ कि (नः प्रजाम्) हमारी प्रजा की (मा रीरिषः) मत हिंसा कर (मा उत) और न ही (वीरान्) वीरों की [हिंसा कर]।

१७. (दुर्हणा निर्ऋतिः) दुर्बाध मौत (मो सु नः) हमें नहीं (परावधीत्) मार सकती, (परावधीत्) मार सकती। (पदीष्ट) गिर जाती है (तृष्णया सह) अपनी तृष्णा के साथ।

१८. (वयम्) हम (तमसः) तमस् से, तामसिकता से (उत्) ऊपर उठ आये हैं। हमने (उत्तमं नाकम्) उत्तम द्युलोक में (रोहन्तः) आरोहण करते हुए (देवत्रा देवम्) देवों में देव, प्रकाशकों में श्रेष्ठ प्रकाशक (उत्तमं ज्योतिः) उत्तम ज्योति (सूर्यम्) सूर्य को (अगन्म) पा लिया है।

१९. हे मेरे कदम! (विष्णोः क्रमः असि) तू विष्णु का कदम है, (सपत्नहा) शत्रु-हन्ता है, (पृथिवीसंशितः) पृथिवी भर में तीक्ष्ण है

हे मेरे कदम! तू छोटा नहीं, तू विष्णु का विशाल कदम है, शत्रुहन्ता है, पृथिवी भर में तीक्ष्ण है; तुझ में अग्नि का तेज है। मैं तुझे पृथिवी पर रखूँगा। जो मुझसे शत्रुता मोल लेगा, और मैं भी जिसकी दुष्टता के कारण जिससे शत्रुता ठानूँगा, उसे मैं पृथिवी पर जहाँ भी पाऊँगा गर्दन पकड़कर निकाल दूँगा। देख लेना वह जीवित नहीं बचेगा, प्राण उसे छोड़ जाएगा।

२०. अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥

—ऋग्० ८।४८।३

हमने अमरता के नुसखे सोम-रस का पान कर लिया है, हम अमर हो गये हैं। हमने ज्योति पा ली है, हमने देवों को पा लिया है। शत्रु हमारा क्या कर सकता है, हिंसक हमारा क्या बिगाड़ सकता है?

२१. नहि मे अक्षिपच्चनाऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।६

मैंने सोमरस का, वीरता के अमृतरस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है। मुझमें वह शक्ति आ गयी है कि संसार का कोई मनुष्य मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

(अग्नितेजाः) अग्नि के समान तेजस्वी है। (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (विक्रमे) कदम रखता हूँ (अहम्) मैं। (पृथिव्याः) पृथिवी से (तं निर्भजामः) उसे निकाल दूँगा, (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो मुझसे शत्रुता करता है और (यं वयं द्विष्मः) जिससे मैं भी शत्रुता करता हूँ। (स मा जीवीत्) वह जीवित न रहे, (तम्) उसे (प्राणः जहातु) प्राण छोड़ जाए।

२०. हमने (सोमम्) सोम-रस (अपाम) पी लिया है, (अमृताः अभूम) हम अमर हो गये हैं। (ज्योतिः) ज्योति को (अगन्म) पा लिया है, (देवान्) देवों को (अविदाम) पा लिया है। (नूनम्) निश्चय ही (अरातिः) शत्रु (अस्मान् किं कृणवत्) हमारा क्या कर सकेगा, (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा (किमु) हमारा क्या बिगाड़ सकेगी।

२१. (पञ्च कृष्टयः) पाँचों मनुष्य, धरती भर के सब मनुष्य (मे) मेरे (अक्षिपत् चन) अक्षिपात तक को, पलक झपकाने की छोटी-सी क्रिया तक को (नहि अच्छान्त्सुः) नहीं रोक सकते, मैंने (कुवित्) बहुत-बहुत (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस

२२. नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।७

मैं तो इतना महान् हो गया हूँ कि ये विशाल द्यावापृथिवी मेरे एक पासे के बराबर भी नहीं हैं। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

२३. अभि द्यां महिना भुवमभी३ मां पृथिवीं महीम्।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।८

नि:सन्देह यह आकाश बड़ा महिमाशाली है, पर अपनी महत्ता से मैंने इसे भी पीछे छोड़ दिया है। नि:सन्देह यह पृथिवी बड़ी विशाल है, पर अपनी विशालता से मैंने इसे भी परास्त कर दिया है। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

२४. हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।९

अरे, मेरे अन्दर तो वह शक्ति आ गयी है कि कहो तो इस धरती तक को उठाकर यहाँ रख दूँ, वहाँ रख दूँ, जहाँ कहो वहीं रख दूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

२५. ओषमित् पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।१०

कारण से।

२२. (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों (मे) मेरे (अन्यं पक्षं चन) एक पासे के भी (प्रति) बराबर (नहि) नहीं हैं।

२३. मैंने (महिना) अपनी महिमा से (द्याम्) द्यौ लोक को (अभि भुवम्) पराजित कर दिया है, (इमाम्) इस (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभिभुवम्) पराजित कर दिया है।

२४. (हन्त) अरे भाई! (अहम्) मैं (इमां पृथिवीम्) इस पृथिवी को (इह वा इह वा) यहाँ या यहाँ [जहाँ बताओ वहाँ] (निदधानि) उठा कर धर दूँ।

२५. (अहम्) मैं (पृथिवीम् ओषम् इत्) पृथिवी के दाहक सूर्य तक को (इह वा इह वा) यहाँ या यहाँ [जहाँ बताओ वहाँ] (जङ्घनानि) प्रहार करके पहुँचा दूँ।

मैं पृथिवी को दग्ध करनेवाले इस विशाल सूर्य तक को छोटी सी फुटबाल की तरह एक ठोकर से जहाँ कहो वहीं पहुँचा दूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

२६. अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः।
कुवित् सोमस्यापामिति॥ —ऋग्० १०।११९।१२

अरे, मैं तो आकाश में उदित साक्षात् महातेजस्वी सूर्य हो गया हूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

मैं

वीर हूँ! वीर हूँ!! वीर हूँ!!!

---

२६. (अहम्) मैं तो (अभिनभ्यम्) आकाश में (उदीषितः) उदित हुआ-हुआ (महामहः) महातेजस्वी सूर्य (अस्मि) हो गया हूँ, मैंने (कुवित्) बहुत-बहुत (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस कारण से।

मन्त्रानुक्रमणिका

127842

विद्वानों की सम्मतियाँ

स्व० महात्मा श्री नारायण स्वामीजी—

संग्रह इतना उत्तम हुआ है कि मन्त्रों के पढ़ने से मनुष्य का हृदय वीरता के आवेश में आह्लादित हो उठता है।

स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्दजी—

पुस्तक प्रत्येक आर्यवीर के कण्ठस्थ करने योग्य है। इसका प्रचार विस्तार से होना चाहिए।

स्वामी श्री वेदानन्दजी तीर्थ—

यह गर्जना मृतकों में प्राण सञ्चार करनेवाली है।

आचार्य नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ—

इन मन्त्रों के पढ़ने से निराश हृदय में भी आशा का सञ्चार होने लगता है।

पं० श्री हनुमानप्रसादजी पौद्दार, सम्पादक 'कल्याण'—

यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। हिन्दू जनता के लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक के संग्रह और मनन करने योग्य है।

देशभक्त कुँवर चाँद करणजी शारदा—

हिन्दू जाति में वीरता के भाव फूँकने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

डॉ० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालङ्कार,
एम०ए० एल०टी० डी०लिट्—

आपने इस पुस्तक की रचना करके हिन्दू जाति और वैदिक धर्मावलम्बियों का महान् उपकार किया है।

लेखक की अन्य पुस्तकें

* वैदिक सूक्तियाँ (अथर्ववेद की एक सहस्त्र सूक्तियाँ अर्थसहित)
* वेदों की वर्णन-शैलियाँ
* वेदभाष्यकारों की वेदार्थ-प्रक्रियाएँ
* वैदिकशब्दार्थविचार:
* महर्षि दयानन्द के शिक्षा, राजनीति और कलाकौशल सम्बन्धी विचार
* यज्ञमीमांसा
* वेदमञ्जरी
* वैदिक नारी
* आर्ष ज्योति
* वैदिक मधुवृष्टि
* सामवेदभाष्यम् (पूर्वार्च्चिक:)
* सामवेदभाष्यम् (उत्तरार्च्चिक:)
* ऋग्वेद-ज्योति